**धर्म का रहस्य**
**जगद्गुरुत्तम श्री कृपालुजी महाराज के उपदेशों पर आधारित**
**शब्दांकन : चंद्रशेखर चिपलुनकर**

धर्म क्या है? यह एक बड़ा जटिल प्रश्न है। इसका सटीक उत्तर केवल भगवान या महापुरुष (संत) ही दे सकते हैं। इसलिए वेदों ने कहा है

**आचार्यवान् पुरुषो हि वेद। (छान्दोग्योपनिषद् 6.14.2)**

अर्थात् महापुरुष से ही वेदों का अर्थ जानो। जैसे पांच आंधो ने हाथी के बारे में बताया कि हाथी दीवार, खंबा इ. जैसा है। लेकिन जिसके पास दृष्टी है उसने हाथी के बारे में सही सही बताया। ऐसे ही वेद दिव्य, चेतन, अभौतिक वाणी होने से उसे जानने के लिए दिव्य बुद्धि जरूरी है। अन्यथा वेदों का अर्थ बजाय अनर्थ किया जायेगा। शंकाओं के जंजाल में फस कर वेद शास्त्र के प्रति अनास्था होगी जो कि अब हो रहा है।

वेद वर्णित धर्म में सृष्टि सुचारू रूप से चले तथा जीव अपना लक्ष्य प्राप्त करे, इसके लिए नियम दिए गए हैं। इसलिए धर्म की परिभाषा करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि इस सृष्टि का निर्माण ही क्यों हुआ।

**सोऽकामयत। बहु स्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत।**
**स तपस्तप्त्वा इदं सर्वमसृजत॥ (तैत्तिरीयोपनिषद् 2.6)**
**सोऽकामयत। बहु स्यां प्रजायेय॥**
**(बृहदारण्यकोपनिषद् 1.4.17)**

उसने कामना की, तो सृष्टि का सृजन हो गया। ऐसा भी लिखा है कि उसने तप किया। क्या तप किया? भगवान मुस्कुराए और सृष्टि

बन गई।

**सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।**
**दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥ (ऋग्वेद 10.190.3)**

भगवान ने सृष्टी नयी नही बनायी। उसने तो जैसे सृष्टी प्रलय के पहले थी वैसे प्रकट की। जब सृष्टी या संसार अपने उद्देश्य हासिल करने के कबिल नही रहता तो प्रलय होता है। जो सरकता है उसे संसार कहते है। जैसे सतयुग से कलियुग के अंत तक संसार की अधोगती चरम सीमा पर पहुंच जाती है, तो भगवान फिर से उसे ठीक कर सतयुग का आरंभ कर देते है। वही जीव, वही उनका अंतःकरण, वही उनकी इच्छा और वासनाएं, वैसी की वैसी सृष्टी का भगवान पुनर्निर्माण करते है, नवनिर्माण नही। सृज धातु का अर्थ विसर्ग करना मतलब अलग करना, छोड़ना। महाप्रलय में जो सृष्टी भगवान में लीन थी उसे भगवान ने अपने से अलग कर उसका सृजन किया और एक एक परमाणु में व्याप्त हुए ताकि हर एक परमाणु नियम के अनुसार काम करे।

**आत्मा वा इदमेक एवाग्रे आसीन्नान्यत्किंचन मिषत्।**
**स ईच्छत लोकान्नु सृजा इति॥ (ऐतरेयोपनिषद् 1.1.1)**

सृष्टि के पूर्व एक अकेला भगवान था। यहाँ आत्मा शब्द भगवान के लिए आया है। पूरी सृष्टी और सब जीव उसके महोदर में समाये थे। उसने ही सब सृजन किया, अर्थात् सृष्टि और जीव दोनों को प्रकट किया। अब प्रश्न यह है कि क्या भगवान के पास किसी वस्तु की कमी थी, जिसके पाने के लिए उन्होंने सृष्टि का उपक्रम किया?

चलिए पहले जानते हैं कि भगवान किसे कहते हैं। भगवान के लिए कहा गया है —

**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति॥ (तैत्तिरीयोपनिषद् 3.1)**

जिससे विश्व उत्पन्न होता है, जिसमें विश्व स्थित रहता है और अंत में जिसमें विश्व का लय होता है, उसे भगवान कहते हैं। ऐसा कौनसा तत्व है, इसकी खोज में महर्षि भृगु ने तपस्या की और अंत में अपना निष्कर्ष बताया तैत्तिरीयोपनिषद् में -

**आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।**
**आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति॥ (तैत्तिरीयोपनिषद् 3.6)**

ऐसा तत्व आनंद है। आनंद (सुख) ही ब्रह्म (भगवान) है। आनंद से विश्व की उत्पत्ति होती है। आनंद में ही यह विश्व स्थित रहता है और अंत में आनंद में ही इसका लय होता है। इसका अर्थ यह है कि आनंद का दूसरा नाम भगवान है — आनंद या सुख ही भगवान हैं और भगवान ही आनंद हैं।

**लोके नहि स विद्येत यो न राममनुव्रतः॥**
**( रामायण, उत्तरकाण्ड 94.31)**

अब दुनिया के प्रत्येक जीव को सुख ही चाहिए। विश्व में कोई भी चाहकर भी दुःख नहीं चाह सकता। सुख के लिए ही सब जीव अनादि काल से प्रयत्नशील हैं। सब सुख या आनंद को मानते हैं, तभी तो आनंद पाने का प्रयत्न कर रहे हैं। आनंद का दूसरा नाम भगवान होने के कारण ही रामायण कहती है कि विश्व में ऐसा कोई जीव नहीं हो सकता जो भगवान को न मानता हो, अर्थात् नास्तिक हो।

**रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति॥**
**(तैत्तिरीयोपनिषद् 2.7)**

ब्रह्म ही रस (सुख) है। उसको पाकर ही जीव आनंदमय होता है।

**तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति। नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥**
**(श्वेताश्वरोपनिषद् 3.8)**

उसे पाकर ही जीव आनंदमय होता है। अन्य कोई मार्ग नहीं है। अब प्रश्न यह है कि क्या ब्रह्म और भगवान एक ही हैं? तो सुनिए — गीता में अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से पूछा

**एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।**
**ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः॥**
**(गीता 12.1)**

आपके सगुण साकार रूप को भजने वाले और निर्गुण निराकार रूप (ब्रह्म) को भजने वालों में से कौन श्रेष्ठ है? और भगवान ने इसका विस्तारपूर्वक उत्तर दिया है। अर्थात् सगुण साकार भगवान और निर्गुण निराकार ब्रह्म एक ही हैं, बस अभिव्यक्ति में अंतर है।

**द्वै वा वा ब्रह्मणो रूपे। मूर्तं चैवामूर्तं च।**
**मर्त्यं चामृतं च। स्थितं च यच्च सच्च त्यच्च॥**
**(बृहदारण्यकोपनिषद् 2.3.1)**

भगवान के दो रूप हैं — मूर्त रूप प्रकट होता है, जिसे अवतार कहते हैं, और इस अवतार की समय-सीमा होती है। अर्थात् जब चाहे भगवान जो साकार रूप चाहें धारण करते हैं। और निराकार रूप से तो वे सर्वत्र व्याप्त रहते ही हैं।

**तुज सगुण म्हणो कि निर्गुण रे। सगुण-निर्गुण एकु गोविंदु रे।**

**तुज आकार म्हाणों की निराकर रे। साकारु-निरुकारु एकु गोविंदु रे॥ (ज्ञानेश्वरी 5.36–5.37)**

सगुण भगवान और निर्गुण ब्रह्म — दोनों ही गोविंद हैं।

**न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।**
**हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिंसीदित्येषा यस्मान् जात इत्येषः॥ (यजुर्वेद 32.3)**

इस श्लोक का अर्थ है कि ऐसा कोई हो ही नहीं सकता जो भगवान की प्रतिमा स्वरूप हो। तात्पर्य यह है कि भगवान की समानता कर सके ऐसा दूसरा कोई तत्व नहीं। भगवान चेतन तत्व हैं। चेतन क्या होता है? चेतन वह है जो भौतिक या मायिक न हो। हमारी मन-बुद्धि केवल मायिक चिंतन ही कर सकती है। माया भगवान की  जड (निर्जिव) शक्ति है। सब दृष्य और अदृष्य भौतिक वस्तुएँ एवं उनसे मिलने वाला इंद्रिय सुख मायिक कहलाता है। हमे कभी कोई चेतन सुख मिला ही नही, ना ही कोई चेतन वस्तु का हमे सीधा अनुभव है। हम जानते ही नही कि चेतन क्या होता है। जीव (आत्मा) और भगवान चेतन है। उनका हमे कोई अनुभव नही क्योंकि मन इंद्रियों द्वारा ही हमे अनुभव होता है और वे मायिक होने से दिव्य आत्मा और भगवान को ग्रहण नही कर सकते। कोई भी चित्र या मूर्ति भौतिक होने से चेतन भगवान की वास्तविक प्रतिमा या स्वयं भगवान नहीं होती। मूर्ति तो पत्थर ही है — उसमें किसी शिल्पकार ने आँखें, हाथ, पाँव, नाक आदि बना दिए - है तो वह पत्थर ही!

लेकिन मूर्ति में भगवान व्याप्त हैं, क्योंकि ऐसा कोई अणु-रेणु नहीं जहाँ भगवान व्याप्त न हों। वही भगवान सबके मन में भी रहते हैं। इसलिए वे जानते हैं कि मूर्ति के माध्यम से उन्हें याद किया जा रहा है, उनकी सेवा की जा रही है, उनका स्मरण किया जा रहा है।

मूर्ति हमें भाव बनाने में मदद करती है।

**भावग्राह्यं मनिराख्यं भावाभावकरं शिवम् ।**
**(श्वेताश्वतरोपनिषद् 5.।4)**

जो सृष्टी का निर्माणऔर उसका प्रलय करते है, वे भगवान मन के भाव को ही स्वीकार करते है। इसलिए मूर्ति-पूजा करते समय यह भाव अवश्य मन में आना चाहिए कि हम उस सर्वेश्वर भगवान की उपासना कर रहे हैं। तभी मूर्ति-पूजा से लाभ होगा। मूर्ति या चित्र में कोई विशेषता नहीं होती जब तक भाव न हो।

जिस प्रकार आदमी का जैसा रूप हो वैसे ही उसकी मूर्ति या चित्र होते हैं, उसी प्रकार भगवान भी उसी रूप में प्रकट हो सकते हैं जैसे कि मूर्ति या चित्र है। इस दृष्टि से मूर्ति भगवान की प्रतिमा है, चित्र भी भगवान का है। रुपध्यान करते समय ये सोचिए कि भगवान उस मूर्ति या चित्र से निकल कर बाहर आये है। और अपने भाव के अनुसार उनकी लीला रचिए। बिना भाव के मूर्ति या चित्र से कोई लाभ नहीं मिलता। भाव महत्वपूर्ण है। भाव का मतलब है प्रेम। भक्ति पाँच भाव से की जाती है।

**शान्तो दास्यं च सख्यं च वासल्यं माधुर्य एव च।**
**एते पञ्च रसा ज्ञेया मुक्तानामपि दैवतः॥**
**(भक्ति-रसामृत-सिन्धु,पूर्वविभाग 2.5)**

शान्त भाव — प्रजा का राजा से प्रेम (उदा. अयोध्यावासी)।
दास्य भाव — दास का स्वामी से प्रेम (उदा. तुलसीदास)।
सख्य भाव — मित्र का मित्र से प्रेम (उदा. कृष्ण के गोप-सखा)।
वासल्य भाव — माता-पिता का संतान के प्रति प्रेम (उदा. यशोदा मैया)।
माधुर्य भाव — प्रेयसी का प्रियतम के प्रति प्रेम (उदा. ब्रज की

गोपियाँ)।
सबसे निकट और मधुरतम माधुर्य भाव है। इसमें भगवान से कोई दूरी नही। सर्वाधिक गहरा प्रेम रस पीने के लिए माधुर्य भाव ही अपनाना पडेगा। आप ये मत सोचो कि हम पुरुष है तो कैसे होगा?

**बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।**
**भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ॥**
**नैव स्त्री न पुमान् एष न चैवायं नपुंसकः ।**
**यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते ॥**
**सङ्कल्पनस्पर्शनदृष्टिमोहै-र्ग्रासाम्बुवृष्त्यात्मविवृद्धिजन्म ।**
**कर्मानुगान्यनुक्रमेण देहीस्थानेषु रूपाण्यभिसम्प्रपद्यते ॥**
**(श्वेताश्वतरोपनिषद् 5.9,5.10,5.11)**

आत्मा अति सूक्ष्म है। वो न तो स्त्री है, न पुरुष है, न नंपुसंक है। अपने कर्म के अनुसार जैसा शरीर मिलता है वैसा वो कहलाती है। स्त्री, पुरुष, पशु, पक्षी ये तो आत्मा के देह है। जो अभी स्त्री है वो अनंत बार पुरुष और पुरुष स्त्री बन चुके है।

**त्वमेव पुरुषो नाथ नान्योऽस्ति जगतीपते ।**
**स्त्रियः सर्वा समाख्याताः प्रकृतिस्त्वं परः पुमान् ॥ (भागवत)**
**तमीश्वराणां परमं महेश्वरंतं देवतानां परमं च दैवतम् ।**
**पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥**
**(श्वेताश्वतरोपनिषद् 6.7)**

भगवान एकमेव शक्तिमान, सब के भर्ता, भरण-पोषण कर्ता, शक्ति प्रदाता पुरुष है। जीव अशक्त भार्या स्त्री है, जिसको सबकुछ, यहा तक कि जीवन भी भगवान ही देता है। वो पतियों का भी पति है। अर्थात् सब जीव स्त्री है।

रस तो दास्य भाव में ही प्रचुर मात्रा में है। जैसे हनुमानजी श्रीराम

की सेवा करने में तत्पर रहते है और असीम आनंद का पान करते है। सख्य भाव में  सखा लोग श्रीकृष्ण को घोडा बनाकर उन सवार हो जाते जब खेल में जब भगवान जान बूझ कर सखाओं को रिझाने के लिए हार जाते। वात्सल्य भाव में यशोदा मैय्या जिस भगवान से महाकाल भी डरता है उस श्रीकृष्ण को उखल से बांध कर एक पतले से डंडे डराती है। जब श्रीकृष्ण कीचड में खेलते खेलते अपने पूरे शरीर पर कीचड उछालते तो मैय्या कहती कि लगता है तू पिछले जन्म में सुअर था। भगवान भी मन ही मन मुस्कुराकर सोचते "मैय्या सही कह रही है। वराह अवतार में मैं सुअर बना था।" प्यार की ये रसभरी बाते और अवतारों में नही। गोपियां थोडा सा छाछ देने के बहाने श्रीकृष्ण को नाच दिखाने को कहती और श्रीकृष्ण नाच दिखाते भी। ये उस प्यार का कमाल है जो गोपियों के पास था।

यहा ये बात समझने की है कि सारे भगवान के अवतार एक ही है। वही त्रेता के श्रीराम द्वापर में श्रीकृष्ण बने है। सीता बनी राधा, लक्ष्मण बने बलराम। सीता की दासियाँ , दण्डकाराण के मुनिजन गोपी बन कर आये। लोगों के दिमाग में शंका रहती है कि हम गणेश जी के, देवीजी के, रामजी के, शिवजी के उपासक है तो श्रीकृष्ण की उपासना कैसे करें? कही हमारे इष्ट नाराज ना हो!

**एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति । (ऋग्वेद 1.164.46)**
**गुणात्मनस्तेऽपि गुणान् विमातुंहितावतारस्य क ईशिरेऽस्य ।**
**कालोपपन्ना हि गुणा न तत्र न नामरूपे गुणजन्मनोऽपि ॥**
**(भागवत 10.14.7)**
**अवतारा: ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः ।**
**यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥ (भागवत 1.3.26)**

एक ही भगवान को अनेक नामों से पुकारा जाता है। उसके अनंत

नाम, अनंत रूप, अनंत अवतार है। दो व्यक्ति हो तो इष्ट बदलने का डर है। जब एक ही भगवान है तो इष्ट बदलने का प्रश्न ही नही। श्रीकृष्ण की रूप माधुरी, लीला माधुरी , प्रेम माधुरी, मुरली माधुरी भगवान के किसी और अवतार में नही मिलेगी। रस की दृष्टी से श्रीकृष्ण अवतार सर्वश्रेष्ठ है। बगैर किसी झिझक से भगवान के किसी भी अन्य रूप का उपासक उसी भगवान के श्रीकृष्ण रूप की उपासना कर सकता है। बल्कि अवतारों में भेद मानना अपराध है।

भगवान से प्रेम करोगे तो उसमें भगवान को अपने बराबर या अपने से छोटा मानोगे, तभी प्रेम होगा। यशोदा मैय्या भगवान को बस अपना बेटा मानती थीं, कोई अनंत-कोटि ब्रह्मांड-नायक भगवान नहीं मानती थीं। सखा उन्हें अपना मित्र मानते थे। गोपियाँ उन्हें अपना प्रियतम मानती थीं।

लेकिन साधनावस्था में भाव के साथ यह महात्म्य-ज्ञान अवश्य रहना चाहिए कि भगवान सर्वव्यापक, सर्वभूतांतरात्मा (सबके हृदय में रहने वाले), सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाले — हमारे सब विचार, संकल्प देखकर उसका फल देने वाले) हैं। इससे हमेशा सजग रहोगे, गलत काम नहीं करोगे। क्योंकि ये जानते रहोगे कि यदि गलत काम किया तो अंदर बैठा हुआ हमारा पिता भगवान उसे लिख लेगा और उसका दंड अवश्य देगा। महात्म्य-ज्ञान से हमारे प्रेम की सदा वृद्धि होती जाएगी यदि हमारा प्रेम निष्काम है। और जब उनके मिले बिना एक क्षण भी रहना संभव न होगा, एक पल युग जैसा लगेगा, आँसू नहीं रुकेंगे, तो भगवान दौड़कर चले आएँगे। यदि सकाम प्रेम है तो सुख मिलने पर बढ़ेगा और दुःख मिलने पर घटेगा। सुख-दुःख अपने ही कर्मों से मिलते हैं। उसके लिए भगवान को दोष देना महामूर्खता है। भगवान प्रेरक कर्ता है। जीव प्रत्यक्ष कर्ता होने से जीव ही कर्म फल भोगता है। जीव के बारे में वेद कहता है

**स वा एष महानज आत्मा योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु।**
**(बृहदारण्यकोपनिषद् 4.4.5)**
**अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः ।**
**(श्वेताश्वतरोपनिषद् 3.13)**
**समानो वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनिशया शोचति मुह्यमानः।**
**मुण्डकोपनिषद् (2.2.7)**
**अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।**
**(कठोपनिषद् 1.2.20)**
**य आत्मनि तिष्ठन् आत्मनोऽन्तरोयमात्मा न**
**वेदयस्यान्तरोऽयमात्माय आत्मानमन्तरो यमयति एष त**
**आत्मान्तर्याम्यमृतः॥**
**(बृहदारण्यक उपनिषद् 3.7.3)**
**यो योनीषु निहितः तिष्ठत्येकः यो विश्वं भुवनमाविवेश ।**
**यो देवानां नामधेयानि वेद तस्मै देवाय नमो नमः ॥ (श्वेताश्वर उपनिषद् 5.2)**

आत्मा सूक्ष्म एवं ज्ञानमय, आनंदमय है। भगवान प्रत्येक योनि के प्रत्येक जीव पर शासन करता है। जीव कर्म करने में तो स्वतंत्र है लेकिन फल भोगने में परतंत्र है। कर्म करने पर फल नही भोगना पड़ेगा ऐसा हो ही नही सकता। भगवान जो सूक्ष्म आत्मा से भी सूक्ष्म है और विशाल से भी विशाल है, वो भी उसी हृदय में रहता है। जीवात्मा उसी परमात्मा में स्थित है। जरा सा भी अंतर नही। हमारा और भगवान का इतना नजदीकी रिश्ता है।

**आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।**
**बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।। (कठोपनिषद 1.3.3)**

जीव के पास एक शरीररूपी रथ है, इंद्रियाँ उसके घोड़े हैं, मन लगाम है, बुद्धि सारथी है, और आत्मा (जीव) रथ पर सवार यात्री

है। जैसे रथ का सारथी लगाम के द्वारा घोडे दौडाता है; उसी प्रकार बुद्धि अपने निर्णय से मन के द्वारा इंद्रियों के माध्यम से शरीर को सुख प्राप्ति के लिए दौडाती है। इसलिए जीव को अपनी बुद्धि ही ठीक करनी होगी। बुद्धि ठीक करने के लिए सबसे प्रथम उसे ज्ञान देना होगा। संसार क्या है? भगवान क्या है? जीव या आत्मा क्या है? सुख क्या है? सुख कैसे मिलेगा? दुःख क्यों मिलता है? जीवन क्या है? मृत्यु क्या है? मन बुद्धि के निर्णय के विपरित काम नही कर सकता। प्रिय से प्रिय खाने का पदार्थ भी डॉक्टर के कहने पर मन नही खाता क्योंकि बुद्धि का निर्णय है कि ये हानिकारक है। जब बुद्धि के पास सही इन्फॉरमेशन होगी तभी वो सही निर्णय लेगी। हम लोग जीवन जैसे मिला है वैसे जीते है। डिग्री, डिप्लोमा, शादी, बच्चे, मकान, नौकरी, बिजनेस, प्रतिष्ठा, धन, दौलत, खेल, कला, चकाचौंध, सत्ता आदि में मस्त रहते है और एक दिन मर जाते है। पता भी नहीं चलता कि जीवन का मतलब क्या था? जीवन किसलिए मिला था? इसीलिए तत्वज्ञान प्राप्त करना  और उसकी बार बार रिविजन करना सबसे महत्वपूर्ण है। गौरांग महाप्रभु ने भी कहा था

**सिद्धान्त बलिया चित्ते ना कर आलस।**
**इहा हैते कृष्णे लागे सुदृढ़ मानस॥ (चैतन्य चरितामृत)**

तत्वज्ञान प्राप्त करने में लापरवाही ना करो। केवल प्रेम करने जाओगे तो नाना शंका कुशंका के जाल में वो प्रेम ढह जायेगा। तत्वज्ञान ही बुद्धि को ईश्वरीय मार्ग में स्थिर करेगा। जो हम चौरासी लाख घुम रहे है वो बुद्धि का ही कमाल है। बुद्धि ये निर्णय कि संसार प्राप्ति करो क्योंकि सुख संसार में ही है, हमे उस परमानंद से वंचित कर रहा है।

**तथा फलमवाप्नोति नान्यथा कर्मकृत्क्वचित्॥ (मनुस्मृति)**
**सुखदुःखौ मनुष्याणां यथाकर्मोपभोग्यौ। (मनुस्मृति)**

**यथाकर्म यथाश्रुतं एषः आत्मा लोकं प्राप्नोति। (बृहदारण्यक उपनिषद् 4.4.5)**
**कर्म प्रधान विश्व रचि राखा, जो जस करइ सो तस फल चाखा।(रामचरितमानस)**

जीव जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल प्राप्त करता है। अपने कर्म के अनुसार ही जीव को सुख दुःख मिलता है एवं उसकी गती होती है। कर्म का कर्ता मन ही है। कर्म भी तीन प्रकार होते है - संचित कर्म, प्रारब्ध कर्म, क्रियमाण कर्म। अनंत जन्मों के अनंत कर्मों का संचय संचित कर्म है। उसमें से कुछ भाग इस जन्म में भुगवाया जाता है जिसे प्रारब्ध कहते है। जो कर्म हम वर्तमान में करते है जिसका फल हमे बाद में मिलता है उसे क्रियमाण कर्म कहते है। मन को संसार में या भगवान में क्रियमाण कर्म से ही लगाया जाता है। अब इंद्रिय मन बुद्धि में काम करने की शक्ति भगवान से मिलती है। लेकिन वो शक्ति का इस्तेमाल कैसे करे ये जीव पर निर्भर है। मन बुद्धि दोनों को मिलकर मन भी बोल देते है।

**एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित् । भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेति ॥ (श्वेताश्वतर उपनिषद् 1.12)**

भगवान प्रेरक ब्रह्म, जीव भोक्ता ब्रह्म और माया भोग्य ब्रह्म ये तीनो ब्रह्म अनादि, अनंत होते हुए भी जीव और माया स्वतंत्र नही बल्कि ईश्वर के अधीन है। जीव भोक्ता बनकर माया का उपभोग करता है। भगवान उर प्रेरक बन कर चैतन्य शक्ति जीव के द्वारा मन को देता है। इस शक्ति के बगैर जीव कुछ नही कर पायेगा इसलिए कहा जाता है कि भगवान की इच्छा बगैर पत्ता भी नहीं हिल सकता या भगवान जीव के उर में बैठ कर उसे घुमाता है या भगवान जीव से शुभाशुभ कर्म करवाता है। लेकिन भगवान से

मिली चैतन्य शक्ति का इस्तेमाल मन अपनी इच्छानुसार करता है; जिसके कारण भगवान को प्रेरक कर्ता और जीव को प्रत्यक्ष कर्ता माना जाता है। इसी कारण कर्मफल से मिलने वाले दुःख भी मन के द्वारा जीव को ही भोगने पड़ते है। दुःख से छुटकारा मिलने का एक ही मार्ग है - भगवान की भक्ति।

**नाहं आत्मानमाशाय येन भावेन भावयेत्।**
**तथा भजामि तं भक्तं मयि तद्दर्शनं किल भागवतः॥**
**(भागवत 10.81.6)**

**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्॥ (गीता 4.11)**

भगवान कहते है जो जिस भाव से जिस प्रकार जितनी मात्रा में मुझे भजता है या प्यार करता है, मैं उसी भाव से उसी प्रकार उतनी ही मात्रा में उसे भजता हूँ या प्यार करता हूं। यदि आप भगवान को अपना प्रियतम मानेंगे तो वे भी आपको अपनी प्रेयसी मानेंगे और वैसे ही प्यार और व्यवहार भी करेंगे। इसका अनुभव तब होगा जब आपका अंतःकरण शुद्ध होगा। इसलिए भक्ति आदि साधन बताए गए हैं। भक्ति का अर्थ ही है — प्यार। अब भगवान से प्यार इसलिए आवश्यक है कि मन शुद्ध हो। संसार में प्यार करने से मन अशुद्ध होता है। हम जिसे प्यार करते हैं, वैसे ही बन जाते हैं। प्यार करने से हमारी वही आसक्ति होती है, और वही हमारी गति होती है।

**यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः।**
**भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥**
**(गीता 9.25)**

मुझे प्यार करोगे तो मेरे पास आओगे। जो जिसको भजेगा, उसी को प्राप्त होगा। कोई अपने पिता से प्यार करता है और पिता अपने कर्मों से गधा बना, तो उसको भी गधे का पुत्र बनना पड़ेगा।

तामसी व्यक्ति से प्यार करोगे तो वह तामसी व्यक्ति जिस नरक में जाएगा, आपको भी उसी नरक में जाना पड़ेगा। राजसी व्यक्ति से प्रेम करोगे तो चौरासी लाख योनियों का चक्कर काटना पड़ेगा। स्वर्ग के सात्त्विक देवताओं से प्रेम करोगे तो कुछ समय के लिए स्वर्ग जाओगे, फिर मृत्यु-लोक में आकर कुत्ता, बिल्ली, गधा आदि बनना पड़ेगा।

**ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।**
**एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते॥ (गीता 9.21)**
**इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः।**
**नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति॥ (मुण्डकोपनिषद् 1.2.10)**

वे लोग महामूर्ख हैं जो यज्ञादि पुण्यकर्म करते हैं और परिणामस्वरूप स्वर्ग जाते हैं। स्वर्ग-भोग के बाद मृत्यु-लोक में आकर निम्न योनियों में जाना पड़ता है।

कोई भी कर्म हम क्यों करते हैं? सुख पाने के लिए या भगवान को पाने के लिए। क्योंकि जो अनंत, शाश्वत सुख हम पाना चाहते हैं वही भगवान हैं। सुख और भगवान अलग-अलग वस्तुएँ नहीं । बस हम इस बात को समझ नहीं पा रहे। इसी कारण दिव्य शाश्वत सुख पाने का प्रयत्न करने के बजाय भौतिक, नश्वर इंद्रिय-सुख के पीछे पड़े हैं और परिणामस्वरूप उस परमानंद से वंचित होकर चौरासी लाख योनियों में जन्म-मरणादि, नरकादि अनेक दुःख भोग रहे हैं।

यह सुख पाने का प्रयत्न कब से चल रहा है?

**न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।**

**अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ (कठोपनिषद् 2.18)**

यह आत्मा न जन्म लेती है, न मरती है। यह किसी कारण से उत्पन्न नहीं होती और कभी नष्ट भी नहीं होती। आत्मा अजन्मा, नित्य, शाश्वत और सनातन है। शरीर के नष्ट होने पर भी आत्मा का नाश नही होता।

**वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि। तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥ (गीता 2.22)**

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र त्यागकर नए वस्त्र धारण करता है, वैसे ही आत्मा पुराने शरीर को त्यागकर नए शरीर को धारण करती है। मृत्यु का मतलब है शरीर का त्याग; आत्मा तो अजर-अमर है।

**नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः॥ (भगवद्गीता 2.16)**

जो है, वह रहेगा और जो नहीं है, वह नहीं रहेगा। मतलब ये कि जिस तत्व का अस्तित्व है, उसका कभी अभाव या नाश नहीं हो सकता और  जिस सत्ता या तत्व का अस्तित्व नहीं है, उसका कभी भी प्रादुर्भाव या नव-निर्माण नहीं हो सकता। इसीलिए ब्रह्म (भगवान), जीव और माया — इनका सदा से अस्तित्व है और सदा के लिए रहेगा। ये तीनों अनादि काल से हैं और अनंत काल तक रहेंगे।

**ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः॥ (भगवद्गीता 15.7)**

जीव, जिसे जीवात्मा या केवल आत्मा भी कहते हैं, वह मेरा अंश है। भगवान का अंश होने का अर्थ है आनंद का अंश होना। और

आनंद का अंश होने के कारण ही विश्व का प्रत्येक जीव केवल आनंद ही चाहता है। यह जीव सनातन है अर्थात् अनादि काल से है और अनंत काल तक रहेगा। जीव या तो माया के प्रभाव में रहकर क्षुद्र नश्वर सुख के लिए अनंत दुःख भोगेगा, या भगवान के दिव्य लोक में रहकर सदा के लिए दिव्य सुख का रस पान करेगा। यह मत सोचिए कि जीव एक दिन अपने अंशी भगवान से बिछुड़कर माया के अधीन हो गया। जो जीव अभी माया के अधीन है, वह अनादि काल से ही इस स्थिति में है। जिसका आरंभ नही उसका कोई कारण नही हो सकता। हमे जो भी मयिक सुख दुःख मिलते रहे है वो भगवान नही दे रहा। वो हमे इसलिए मिल रहे कि हमने इस वैश्विक सिस्टिम को समझा ही नही। जीव, ब्रह्म, माया के बारे में कोई जानकारी हासिल नही की।

**अजा एका लोहितशुक्लकृष्णा बह्वीः प्रजाः सृजमानाः सरूपाः। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते महद्भयं वज्रमुद्यतं यत्र॥ (श्वेताश्वरोपनिषद् 4.5)**

माया सत्त्व, रज और तम — इन तीन गुणों से बनी है। यह अनादि है और इसका संचालक भगवान भी अनादि है। जीव भी अनादि है। इसी माया के प्रभाव के कारण ही मन भौतिक जगत में सुख मानता आ रहा है और परिणामस्वरूप जन्म, मरण, नरकादि दुःख भोग रहा है। मायाधीन जीव को माया से निकलने का एक ही मार्ग है — भगवत् शरणागति।

**दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।**
**मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ (भगवद्गीता 7.14)**

इससे यह स्पष्ट होता है कि माया कोई भ्रम नहीं, बल्कि भगवान की दैवी शक्ति है। केवल वे ही जीव, जो भगवान की शरण में जाते हैं, उसकी दैवी त्रिगुणात्मिका माया को पार कर सकते हैं।

शरणागति का अभिप्राय क्या है? जैसे कोई मरीज अपने रोग को ठीक करने के लिए सही डॉक्टर की शरणागत होकर उसके आदेशानुसार दवा खाता है, वैसे ही जीव जब जान लेता है कि यह मायारूपी भवरोग भगवान या महापुरुष की सुने बिना ठीक नहीं होगा, तो उनके आदेशानुसार अपना जीवन चलाता है और अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेता है। संसार में जैसे नकली डॉक्टर से काम नहीं चलता, उसी प्रकार नकली, पाखंडी, ढोंगी संत से काम नहीं चलेगा। जिस संत के मार्गदर्शन में आप चलना चाहते हैं, उसने भगवत्-दर्शन किया होना चाहिए। शरणागति में आज्ञापालन महत्वपूर्ण है। भगवान में पूर्ण विश्वास हो कि वे सदा हमारे साथ रहते हैं और हमारी रक्षा करते हैं।

**अनुकूल्यस्य संकल्पः प्रतिकूलस्य वर्जनम्।**
**(शरणागति-लक्षण वैष्णव ग्रंथ)**

भगवान के अनुकूल ही सोचना। हर अवस्था में — लाभ में, हानि में, यश में, अपयश में, मान में, अपमान में, हार में, जीत में — हर स्थिति में उनकी कृपा का ही अनुभव करना। हमे जो भी मिलता है वो हमारे ही कर्मों का परिणाम है ये बात मस्तिष्क में हमेशा रहेगी तो भगवान को दोष नही दोगे। कर्म हमारी इच्छानुसार करते है तो फल के लिए भगवान को क्यों दोष दे? बिजली घर हमे बिजली देती है। अब कोई उस बिजली से आत्महत्या कर ले तो दोष उस व्यक्ति का है, बिजली देने वाले बिजली घर का नही। ऐसे ही भगवान हमे सुविधा उपलब्ध करायी। हमे शरीर देता है, कर्म करने के लिए शक्ति देता है और उन कर्मों का फल भी देता है। इस सुविधा के कारण ही अनंत जीवो ने भगवत् प्राप्ति की है, अभी भी कर रहे है और आगे भी करेंगे। आप अपने ही गलत कर्मों से दुःखी होते हो। जब तक भगवत् प्राप्ति ना की जाए तब तक जीव की जन्म मरण के दुःखद फेरे की कहानी समाप्त नही होगी। भगवान और महापुरुष के विपरीत कभी न सोचना; उनकी

किसी क्रिया पर संदेह न करना; उन पर पूरा विश्वास रखना। ये शरणागति की दो प्रमुख शर्तें हैं। इसी आशय से श्रीकृष्ण ने कहा-

**संशयात्मा विनश्यति। (भगवद्गीता 4.40)**

भगवान और वेद-शास्त्र पर दृढ़ विश्वास हो — इसे ही श्रद्धा कहते हैं। पहले श्रद्धा, फिर वास्तविक महापुरुष से उपदेश-श्रवण, फिर क्रियात्मक साधना, फिर आध्यात्मिक अनुभव, फिर और उन्नत श्रद्धा। इस क्रम से भगवान में सौ प्रतिशत विश्वास एवं श्रद्धा होगी; अंतःकरण सौ प्रतिशत शुद्ध होगा और हमें हमारा लक्ष्य मिलेगा। किसी से साधना आदि के बारे में बहस ना करे। कीर्तन आदि साधन तो बाहरी है लेकिन हमे हमारी मन की साधना और आध्यात्मिक अनुभव गुप्त रखना है। अन्यथा लोग मजाक बनाएंगे, मन अशांत होगा। अहंकार बढ़ेगा, लोकरंजन की बीमारी से वही या उसके भी नीचे पहुंच जायेंगे जहा से शुरु किया था। जब तक काम, क्रोध इ. दोष पूर्णतः ना चले जाए तथा अनंत आनंद युक्त भगवान के दर्शन ना हो जाए तब तक अपने अध्यात्मिक अनुभव के बारे में किसी को भी कुछ ना बताए।

गुरु के बारे में यमराज ने नचिकेता को बताया -

**तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥ (छान्दोग्योपनिषद् 6.14.2)**

विनम्र भाव से ऐसे गुरु के पास जाओ जिसे वेद-शास्त्र का पूरा ज्ञान हो तथा जिसने भगवत्-प्राप्ति भी की हो। यदि आप इस शर्त के अनुसार देखेंगे तो पाखंडी के चक्कर में नहीं पड़ेंगे। कौन है - जगद्गुरु श्री कृपालु जी महाराज के अलावा - जिसके पास वेद शास्त्र का पूरा ज्ञान है? ऐसा गुरु भगवत्-कृपा से ही मिलता है और वह भगवत्-कृपा पाने के लिए आपको भक्ति करनी पड़ेगी।

जब वास्तविक गुरु मिल जाए तब क्या करना है?

**तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।**
**उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥(गीता 4.34)**

उसे विनम्र भाव से प्रणाम करो। जिज्ञासु भाव से प्रश्न पूछकर तत्वज्ञान प्राप्त करो। फिर उसकी सेवा कर भगवत्-प्राप्ति करो। सेवा प्रेम से होगी। माँ अपने बेटे से प्रेम करती है तो उसकी सब सेवा करती है। जैसे तुरंत जन्मा हुआ बच्चा कुछ नहीं कर सकता और न ही माँ की किसी काम में अपनी बुद्धि का प्रयोग करता है, तो माँ उसकी सब सेवा करती है और उस सेवा में उसे आनंद मिलता है। बच्चा माँ के शरणागत है। इसी प्रकार हमें भगवान के शरणागत होना है। तब **योगक्षेमं वहाम्यहम् (गीता 9.22)** इस गीतोक्ति के अनुसार भगवान माँ की भाँति हमें दिव्य प्रेम और आनंद देंगे।

अब प्रश्न उठता है — हम बच्चे के समान शरणागत हों या माँ के समान प्रेम करें? समाधान यह है कि भगवान से प्रेम करने से अंतःकरण शुद्ध होगा और अंतःकरण पूर्ण शुद्ध होने पर ही शरणागति संभव है। इसलिए शुरुआत प्रेम से ही होगी। इस प्रेम को साधना-भक्ति कहते हैं। जहाँ आपका प्यार है वहाँ आप खुशी से धन खर्च करेंगे (धन की सेवा), उसके बारे में सोचेंगे (मन की सेवा), उसका काम करेंगे (शरीर की सेवा) और इन सब में सुख का अनुभव करेंगे। इसी प्रकार जब भगवान को आप स्वामी, सखा, पुत्र, प्रियतम मानकर प्रेम करेंगे तो उनकी सेवा में सुख का अनुभव करेंगे। हम किसी से प्यार करते है तो उसके रुप , गुण आदि की बाते (कीर्तन) करते है । उसके बारे में सुनना चाहते है (श्रवण)। उसी के विचार बार बार मन में आते है (स्मरण)।

प्यार न होते हुए भी भगवान की सेवा करेंगे या भगवान के नाम,

रूप, लीला, गुण, धाम , तत्वज्ञान आदि का श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण करेंगे तो मन से भगवान का चिंतन होने से धीरे धीरे प्यार हो जायेगा। मां का बच्चे से प्यार कैसे होता है? बच्चा जब पेट में आता है तो मां ये सोचना प्रारंभ करती 'ये मेरा है, ये मेरा है'। वहां से लेकर ये चिंतन लगातार चलता है। ऐसे ही भगवान को अपना मानो और ये चिंतन बार बार करो कि भगवान ही मेरा है। रिश्ता आप जो चाहे वो भगवान से जोडो। नाम जो मनपसंद हो वो दो। भगवान ही मेरा है ये चिंतन बार बार करने से भगवान से प्यार हो जायेगा। मैया श्रीकृष्ण को कहती थी 'कनुवा , लाला '। ये कौनसे वेद वर्णित भगवान के नाम है ?

**अज्ञो वदति विष्णाय धीरो वदति विष्णवे।**
**तयोः फलं तु तुल्यं हि भावग्राही जनार्दनः।।**
**(चैतन्य भागवत 1.11.108)**

भगवान शुद्ध अशुद्ध नही देखते वो तो बस भाव ग्रहण करते है। उच्चारण कैसा भी हो। नाम कुछ भी हो। उन्हें सब स्वीकार है। उनके प्रति प्रेम, अपनापन अति आवश्यक है।

**पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति |**
**तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥ (गीता 9.26)**

पान फुल फल पानी कुछ भी चलेगा यदि उसमें प्यार भरा हो। यदि प्यार नही है तो दुर्योधन के छप्पन्न व्यंजन भी खारे है। उनका भी त्याग हो गया।

देखिए, मन का प्यार वहा अपनेआप होता है जहा से सुख मिलना तय है। इसलिए जब आप ये जान लेंगे और मान लेंगे कि मैं आत्मा हूं और आत्मा का दिव्य सुख दिव्य भगवान से ही मिलेगा, भगवान से ही सुख प्राप्ति होगी और भगवान ही मराणादि सभी दुःखों को समाप्त करेंगे तब आप का प्यार भगवान से बिना कहे

हो जायेगा। खुद को आत्मा जानना और मानना ही भगवान की ओर चलने के आध्यात्मिक प्रवास का पहला और अत्यंत महत्वपूर्ण कदम है।

**मूर्खः देहाद्यहंमतिः॥ (भागवत)**

उद्धव ने जब भगवान से पूछा कि मूर्ख कौन? तब भगवान श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया कि वह व्यक्ति सबसे बड़ा मूर्ख है जो अपने को नश्वर शरीर मानता है। शरीर माना, अब शरीरसुख के सामान धन आदि इकठ्ठा करेगा। शरीर के नातेदार में आसक्ति होगी। मरने पर तो सब छोड़ना ही पडेगा तब असह्य दुःख पायेगा। कर्म बंधन में फस कर चौरासी लाख घुमेगा। ये शरीर तो बस कुछ दिन के लिए मिला है ये जानते हुए भी मुर्खतावश उसका उपभोग कर दुःख, यातना के चक्कर में फसेगा जब कि शरीर का उपयोग भगवत् प्राप्ति कर सदा के लिए सुख पाने के लिए होना चाहिए था। शरीर स्वस्थ रखने के लिए जो जरूरी है जैसे खाना, कपडा इत्यादि वो सब दो। लेकिन मायिक वस्तु और व्यक्तिओं से सुख पाने की योजना सर्वथा गलत है। सुख ईश्वर है और ईश्वर ही सुख है, ये जान कर सुख प्राप्ति के लिए ईश्वर की ओर चलो। सुख पाना है और दुःख से बचना है तो अपने को आत्मा मानो तत्वज्ञान प्राप्त कर भगवान का स्मरण करो। मैं अविनाशी आत्मा हूं और मेरा एकमात्र भगवान ही है ये भाव बारबार चिंतन से ही दृढ होगा। चिंतन, स्मरण ये मन का काम है। भगवत् प्राप्ति ये केवल मन का विषय है इसीलिए मानसी सेवा का बड़ा महत्व है। मानसी सेवा सबसे श्रेष्ठ सेवा मानी गयी है। सेवा ही भक्ति है।

**सा तु कर्म ज्ञान योगेभ्योऽपि मतिरुत्कृष्टा। (नारद भक्तिसूत्र 25)**

भक्ति मन का काम है। नारद जी कहते है कि कर्म, ज्ञान, योग से भाक्ति श्रेष्ठ है। भक्ति ही साधना है और भक्ति ही सिद्धी है।

स्कन्दपुराण में कथा है कि एक गरीब व्यक्ति जिसके पास पूजा-प्रसाद के लिए भी धन नहीं था, उसने केवल मानसी सेवा से ही भगवत्-प्राप्ति कर ली। इससे जाहीर है कि भगवत् क्षेत्र में मन का महत्व अत्यधिक है। मन से ही भगवान का जैसा चाहें वैसा रूप बनाइए - गोरा, काला, लंबा, ठिंगना, बालक, युवा, बुढा, नर सिंह।

**त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारि ।**
**त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥**
**(श्वेताश्वतरोपनिषद 4.3)**

भगवान स्त्री,पुरुष,कुमार,कुमारी सब रूप लेते है। इतना ही नही वृद्ध बनकर लाठी के सहारे चलते हैं। भगवान का रूप बनाने में आप स्वतंत्र हो। यदि आपको कोई लड़का या लडकी अच्छी लगती हो तो राधाकृष्ण का वैसा रूप बना सकते हो। ये ध्यान रहे कि बाहर के मायिक व्यक्ति की भगवान मानकर सेवा नही करनी है बल्कि उस रूप में मन से भगवान की सेवा करनी है। भगवान का मन से जितना सुंदर रूप बना सकते हो बनाइए। अब मन से ही भगवान को नहलाइए, धुलाइए, सुंदर वस्त्र पहनाइए, मनचाहा श्रृंगार कीजिए, भोग लगाइए या जो भी सेवा अपने भाव के अनुसार करना चाहें करिए।

**न देशकालानियमः शौचादिरोधात् पुण्डरीकाक्षस्मरणात्।**
**अन्तर्बाह्यशुद्धिः स्वयं भवति नित्यं तत् सर्वं निषेधति॥ (।**
**विष्णु धर्मोत्तर पुराण 3.5.38)**

मानसी भक्ति में कोई अपराध नहीं होता। इसमें स्थल, काल, स्थिति, शरीर की पवित्रतता, जाति, उम्र, स्त्री-पुरुष का कोई बंधन नहीं। कही भी करिए - मंदिर में, मस्सिद मे, मयखाने में, गुसलखाने में, घर में, जंगल में। ये मत सोचो कि पाखाने में

भगवान का समरण ना करे। सब जगह करो तभी गीता का उपदेश कि सदा सर्वदा भगवान का स्मरण हो इसका पालन होगा । कि

**प्रभु व्यापक सर्वत्र समाना , प्रेम ते प्रकट होई मैं जाना । (तुलसीदास)**

भगवान सब जगह एक समान तरिके से व्याप्त है। काल का भी कोई बंधन नही। कभी भी करिए - सुबह , शाम, दोपहर, रात। कैसे भी करिए - बैठ कर, खडे होकर, खटिया पर सोते हुए, नहा कर, महीनो बगैर नहाये, खाने से पहले, खाने के बाद, खाते खाते या कोई भी कर्म करते हुए भक्ति करिए। यही गीता का कर्म योग है कि बाहर इंद्रियों से कर्म करते हुए मन से सदा श्रीकृष्ण का स्मरण हो।

**तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।**
**मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥ (गीता 8.7)**

सदा सर्वदा सब काम करते हुए भगवान का स्मरण हो। मन बुद्धि का भगवान में सौ प्रतिशत एकत्व हो जाये तो तुरंत भगवान सामने आ जायेंगे।

**अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।**
**साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।। (गीता 9.30)**

भक्ति इतनी शक्तिशाली है कि सबसे दुराचारी व्यक्ति को भी भगवत् प्राप्ति करा सकती है। घोर पापी, तपस्वी, ब्राम्हण, शुद्र, पेड़-पौधे, पक्षी जैसे कागभुशुण्डि भी भक्ति कर सकते हैं। मन से भक्ति करने का सब को समान अधिकार है। और यही भक्ति भगवत् प्राप्ति करा देगी। ये मत सोचो हमे भगवान नही मिल सकते। उन्होंने संसार ही इसलिए बनाया है कि जीव भगवत्

प्राप्ति करे। वो तो प्रतीक्षा करते रहते है कि कोई अपना अंतःकरण रूपी पात्र ठीक कर ले तो मैं तुरंत उस जीव को अपना लू।

**अमृतस्य वै पुत्राः (श्वेताश्वतरोपनिषद् 2.5)**
**सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।**
**तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥ (गीता 15.7)**

हम सब भगवान के पुत्र है। भगवान हमारे पिता है। उनकी संपत्ति पर हमारा पूरा अधिकार है। अतःकरण शुद्धि कि देरी है जो भगवत् स्मरण से होगी।

ये जितने महापुरुष आप सुनते है ये सब पहले हमारे जैसे ही सब काम, क्रोध आदि दोषों से ग्रस्त थे। उन्होंने भगवान के स्मरण से अपना अंतःकरण शुद्ध किया तो भगवान ने कृपा कर उनको अनंत जीवन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख से मालामाल कर दिया। सोचिए, जब कोई मायिक आनंद ही अधिक मात्रा मे मिलता है तो मन की क्या स्थिति होती है, तो उस मायिक आनंद के अनंत गुना आध्यात्मिक आनंद रूपी भगवान की सेवा में कितना आनंद होगा! आप उसकी कल्पना भी नही कर सकते।

दिव्य प्रेमयुक्त सेवा तो पहले नही मिलेगी । वो प्रेमयुक्त सेवा पाने के लिए साधनावस्था में गुरु की सेवा की जाती है। ध्यान रहे कि गुरु श्रोत्रिय (शास्त्र वेद का ग्याता) एवं ब्रम्हनिष्ठ (भगवत प्राप्त ) हो। ऐसा गुरु परिश्रम कर के हमारा अंतःकरण साफ करता है। नकली गुरु मन देख ही नही सकता तो मन की सफाई करने का काम कैसे करेगा? अंतःकरण शुद्ध होने पर गुरु उसमें दिव्य प्रेम डालता है। फिर जीव गोलोक में भगवान की सेवा करता है और असीम दिव्यानंद का अनुभव करता है। श्रीकृष्ण के सुख के लिए निष्काम प्रेमयुक्त हो कर उनकी सेवा करना ही जीव का अंतिम लक्ष्य साबित हुआ।

प्रेम या सेवा करने में सबसे बड़ा बाधक तत्व है अहंकार। इसीलिए **गौरांग महाप्रभु (श्रीचैतन्य महाप्रभु)**, जो श्रीकृष्ण के अवतार थे, उन्होंने दीनता को विशेष महत्व देते हुए कहा —

**तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।**
**अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥ (श्रीशिक्षाष्टक 3)**
**ईश्वरस्याप्यभिमानद्वेषित्वात् दैन्यप्रियत्वाच्च। (नारद भक्ति सूत्र 27)**

भगवान को अहंकार से द्वेष है। उनको अंहकार नही अपितु दीनता, विनम्रता प्रिय है। तृण से भी अधिक दीन भाव होना चाहिए — तृण पर पैर रख दो तो भी उसे कुछ फ़र्क नहीं पड़ता, वह फिर से खड़ा हो जाता है, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। हम को तो जरा सा कोई अपशब्द बोल दे तो आग लग जाती है। परेशान नही होना है। वृक्ष से भी अधिक सहनशील होना चाहिए। वृक्ष पर पत्थर मारो तो वह फल देता है। ऐसे ही लोगों के कटु व्यवहार, कटु वचन का बुरा नहीं मानना चाहिए। किसी के प्रति दुर्भावना न हो। अपने अपकारकर्ता के प्रति भी मंगल-भावना हो। अपना मान न चाहो। दूसरों को सदैव सम्मान दो। ऐसे विनम्र भाव से सदा ही श्री हरि-नाम कीर्तन करो।

ये सब आसानी से नहीं होगा। जब भी अपमान हो तो फील न करने का अभ्यास बार-बार करना पड़ेगा। मन को आप जैसी तालीम दो, वह वैसे ही बन जाता है। मन को समझाओ कि किसी के व्यवहार या शब्द के चुभने से कुछ भी लाभ नहीं होता, बल्कि गुस्सा, खिन्नता आदि से अपनी ही हानि होती है। इनके प्रभाव से बुद्धि ठीक से काम नहीं करती और आवेश में आकर गलत फैसले लिए जाते हैं, जिसके कारण और नुकसान होता है। मन और अशांत होता है, गलत चिंतन करने लगता है। गलत चिंतन शुरू

होते ही उसे काटो। लिंक बनने पर डिसिजन होगा ही। गलत विचारों की धारा को काटना ही पड़ेगा, नहीं तो गलत कर्म ज़रूर होगा। जैसे कोई लगातार सोचे कि "फेल हो गए। अब क्या मुँह दिखाएँगे? आत्महत्या करेंगे, आत्महत्या करेंगे"— तो वह आत्महत्या से बच नहीं सकता। ऐसे विचारों से बचने के लिए मन को तुरंत कहीं और लगा दो। भगवान का रूप-ध्यान करो। आवेग समाप्त होने पर मन सही निर्णय लेता है। गुस्सा आये तो कुछ देर मौन हो जाओ।

**क्रोधे वाच्यावाच्यं न विजानाति कर्हिचित्।**
**नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नवाच्यं विद्यते क्वचित्।। (आर्य चाणक्य)**

क्रोध में बुद्धि काम नही करेगी। गलत निर्णय होगा। गलत शब्द निकल जायेगा। कभी भी मन की उत्तेजक स्थिति में चाहे वह क्रोध से, लालच से, यश से, अपयश से कैसे भी हो कोई भी निर्णय न लो। यश, अपयश, अपमान को मन में घुसने ही न दो। सबसे पहले ऐसी स्थिति में चुप रहो। कोई भी प्रतिक्रिया न दो। अपने विवेक-बुद्धि से सोचो कि अब क्या करना चाहिए जिससे हमारा और नुकसान न हो। गुस्सा आता है तो सोचो सामने वाला ऐसा व्यवहार क्यों कर रहा है? क्या जानबूझ कर मेरा नुकसान करना चाहता है? क्या मुझे गुस्सा दिलाना चाहता है? या उसे कुछ गलतफ़हमी हो गई है? या मेरे व्यवहार में कोई कमी है? अब मुझे क्या करना चाहिए? इस प्रकार मन का ध्यान उस स्थिति से या उस शब्द से हटाओ और उसे इन प्रश्नों को हल करने में लगा दो। इन परिस्थितियों में भगवान का चिंतन अवश्य करो। गुस्सा आदि से तो दुःख ही मिलता है। हमे तो सुख की तलाश है।

अब संसार में जहाँ भी जीव को सुख का आभास होगा, वहीं मन आसक्त होगा। यह आसक्ति ही प्यार कहलाती है। प्यार करने का

तरीका तो एक-सा होता है — चाहे भगवान से करो या इस संसार में किसी से करो। लेकिन प्यार करने का नतीजा, प्यार जिसे करोगे, उस पर निर्भर करेगा। गलत व्यक्ति से प्यार करने पर दुष्परिणाम भोगना पडता है। क्या दोष प्यार में होता है? नही, प्यार जिसे किया उसने ठग लिया। गलत जगह प्यार करने से तो सुख के बजाय दुःख ही मिलेगा। ऐसे ही यदि कोई बडी हमदर्दी जता कर बाते करने लगे तो तुरंत सावध हो जाओ। जरूर ये कुछ बात निकालना चाहता है! इसे मुझसे कुछ चीज चाहिए। उसका विश्वास ना करो। गलत जगह विश्वास करने से नुकसान होगा ही होगा। इसलिए संसार में चालाक बनो। किसी का भी विश्वास ना करो क्योंकि आप किसी के मन को नही देख सकते कि इसका उद्देश्य क्या है? आप उसके बोलने के ढंग से, उसके व्यवहार से अंदाज लगाने से बढकर कुछ नही कर सकते। जब आप से कोई प्यार जताता है तो ये समझे रहो इसके मन कुछ और बात हो सकती है। जरा से भी अनुचित व्यवहार या अनुचित मांग पर सर्तक हो जाओ। किसी भी मायिक व्यक्ति से मर्यादा में रहकर ही व्यवहार करो। बहुत सोच समझ कर डिसिजन लो। जहा तुरंत निर्णय लेना अतिआवश्यक ना हो वहा सोचने के लिए कुछ समय दो। सब पहेलू पर विचार करने के बाद ही निर्णय लेना चाहिए। कम से कम बोलो। जितना जरूरी है उतना बस। जादा बाते करने में कुछ अनचाहा बोल जाओगे। कोई बात सामने वाले को चूभ गयी तो झगडा होगा। वो आपसे मन ही मन दुश्मनी करने लगेगा। आपको परेशान करेगा। आपका पचास प्रतिशत टेन्शन तो ऐसे ही कम हो जायेगा यदि आप कम बोलेंगे और मीठा बोलेंगे।

**पेरिले तैसे उगवते, बोलिल्या सारखे उत्तर येते।**
**मग कर्कश बोलावे, ते काय निमित्त? (समर्थ रामदास)**

जैसे बोओगे वैसे फसल पाओगे, बोलोगे वैसे उत्तर पाओगे तो कटु वचन बोलने का क्या कारण दोगे? जैसा कर्म वैसा फल। जैसी

क्रिया वैसी प्रतिक्रिया। इसलिए बाहरी व्यवहार सही हो लेकिन संसार में प्यार या खार कही ना हो। जहा प्यार करोगे उसी प्रकार फल मिलेगा। भगवान से प्यार करने पर ही भगवान का अनंत आनंद हमे प्राप्त होगा। दान के लिए भी यही नियम है जहा दान दोगे उस पर दान का फल निर्भर करेगा। दान सत्पात्र को ही देना चाहिए। गलत स्थान पर दिया गया दान दुःख ही देगा। कलियुग में दान का बड़ा महत्व है।

**प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।**
**जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥**
**(रामचरितमानस, बालकाण्ड 7.3)**

धर्म के चार चरण सत्य, दया, तप और दान प्रसिद्ध हैं, जिनमें से कलियुग में केवल दान रूपी चरण ही प्रधान है। जिस किसी प्रकार भी दान दो  चाहे भाव से, चाहे कुभाव से, चाहे लज्जा से दान कल्याण ही करता है। लेकिन यदि आपका दान किसी पाप-कर्म में प्रयुक्त हुआ तो पापी के साथ-साथ आपको भी दंड मिलेगा। संसारी व्यक्तियों को दिया गया दान चौरासी लाख योनियों में घुमाएगा। तामस व्यक्तियों को दिया गया दान नरक तक ले जाएगा।

**दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।**
**देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥**
**(भगवद्गीता 17.20)**

**सुपात्रे यत् प्रदीयेत तत् दानमिति शब्द्यते।**
**अयोग्ये यत् प्रदीयेत तद्दानं निरर्थकं स्मृतम्॥ (नारद पुराण)**

दान सत्पात्र को ही देना चाहिए।

**यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।**

**अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥ (भागवत 7.14.8)**

जितना पेट भरने के लिए चाहिए, उतने ही धन पर जीवों का अधिकार है। इससे अधिक जिसे भी अपना मान ले, वह चोर है और उसे दंड मिलेगा। इससे अधिक धन यदि आपके पास है तो सत्पात्र को दान करना चाहिए। और यदि दान नहीं किया तो —

**अदत्तदानाच्च भवेद्दरिद्रो दारिद्र्यदोषेण करोति पापम्।**
**पापप्रभावान्नरकं प्रयाति पुनर्दरिद्रः पुनरेव पापी॥**
**(भागवत 7.14.9)**

दान न देने या कुपात्र को दान देने से व्यक्ति दरिद्र हो जाता है। दरिद्रता के कारण पाप करता है, पाप से नरक जाता है, फिर दरिद्रता। फिर पाप करता है और कई मनुष्य-जन्मों तक यह चक्र चलता रहता है। ऐसे ही एक मनुष्य-जन्म के बाद दूसरा मनुष्य-जन्म कई कल्पों बाद मिलता है। तो सोचिए, सत्पात्र को दान न देना कितना हानिकारक है। दान का एक और पहेलु ये है कि कलियुग में धन में सबसे अधिक आसक्ति होती है। और भगवान कहते है -

**विहाय कामान्यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।**
**निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥ (गीता 2.7)**

जिसका मन इस दुनिया में कही भी आसक्त नही है वही मुझे प्राप्त करता है। दान देने से धन में आसक्ति कम होती जायेगी। वैसे भी हम धन का व्यय वहीं करते हैं जहाँ हमारी आसक्ति होती है। इस आसक्ति को ही प्यार कह देते है। लेकिन संसार में प्यार करने का नतीजा हमने देखा है — संसार से मिलने वाला अनेक प्रकार का दुःख, जन्म-मरण का दुःख, चौरासी लाख नरकादि योनियों में मिलने वाला दुःख। अर्थात् संसार में प्यार करने का

नतीजा दुःख ही दुःख है इसीलिए सब वेद-शास्त्र कहते हैं कि संसार में बस कर्तव्य करो। संसारी व्यक्ति या वस्तुओं से प्यार न करो। केवल भगवान से ही प्यार करो — यही भक्ति है।

संसारी व्यक्ति से द्वेष या दुश्मनी भी नही करो। संसार में कोई भी आपके मन के प्यार का अंदाज़ आपके बाहरी व्यवहार से लगाता है। बाहरी व्यवहार को एक्टिंग या अभिनय कहते है। मन का प्यार तो कोई तभी देखेगा जब वह मन देख सके। संसार में सब अपना काम. चाहते हैं। संसार बाहरी व्यवहार ही देख सकता है। इसलिए सब से व्यवहार अच्छा और बाहरी प्यार का रखना। भगवान बाहरी व्यवहार नहीं, बल्कि मन का प्यार देखते हैं। इसलिए प्यार भगवान से करना। मतलब ये कि बाहरी संसार में एक्टिंग - माता, पिता, पती, स्त्री, मित्र इत्यादि सब से प्यार का अभिनय और भगवान से मन से मनचाहा रिश्ता जोडकर मन का असली प्यार करना। जिसको जो चीज़ चाहिए, उसको वही देने में ही समझदारी है। प्यार का अभिनय भी उतनाही करो जहा तक हमारा आध्यात्मिक नुकसान ना हो। सतर्क रहो, परिणाम में मिलने वाला दुःख हमे ही भोगना पड़ेगा। इसलिए नारद जी ने सावधान किया **लोके वेदेषु तदनुकूलाचरणं तद्विरोधिषूदासीनता च॥** लोकाचार और धर्माचार का जो आचरण हमारे भक्ति में बाधा उत्पन्न करे, उसे मत करो। लेकिन उसके विरोध में बहस भी ना करो। उस पर ध्यान मत दो। उसको नजरअंदाज करो। भक्ति करने वाले ने लोकाचार और धर्माचार पूरी तरह से छोड दिया तो भी कोई दंड मिलने का सवाल ही नहीं। तुलसीदास कहते हैं **रामहि केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा॥** जो भी भगवान को जानना चाहता है वो ये समझ ले कि भगवान केवल प्रेम से मिलेंगे। अन्य लोकाचार, धर्माचार, ज्ञान, तप, व्रत इत्यादि की कोई आवश्यकता नहीं। वे आगे कहते है

**जाके प्रिय न राम-बदैही।**
**तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥**
**तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।**
**बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज-बनितन्हि, भये मुद-मंगलकारी॥**
**(विनय पत्रिका)**

यहा देखिए गोपियों क्या पति का त्याग करके वन में साधना के लिए गयी थी? नही। पति या किसी के भी त्याग का अभिप्राय है कि उसके प्रति कर्तव्य करते रहे (यदि आप जरूरी समझते है तो, नही तो उसकी भी कोई आवश्यकता नही) जैसे गोपियां करती रही लेकिन मन से किसी भी रिश्तेदार को अपना ना माने। उनसे से मन का प्यार ना करे। इनसे हमारा कोई रिश्ता है ही नही। ये नाता तो श्रीकृष्ण से ही है। श्रीकृष्ण को ही अपना पति , प्रियतम , भाई, बहन, माता, पित , मित्र माने और श्रीकृष्ण से ही मन का प्यार दे। संसार में तो शरीर के नाते को ही माना जाता है लेकिन भगवान से नाता मन से जुडता है, शरीर से नही। मन को कोई देख नही सकता इसलिए मन से आप श्रीकृष्ण को ही अपना माने और संसार में शरीर से काम करते रहे। लेकिन जब मुरली द्वारा रास में बुलावा आया तो

**तास्त्यक्त्वा लोकपाशान् आशाः च कुटुम्बिन्यः।**
**जग्मुः कृष्णान्तिकं प्रेम्णा तत्सर्वस्वं न्यवेदयन्॥ (भागवत 10.29.11)**

गोपियों ने लोक-मर्यादा, आशा, परिवार सब छोड़कर प्रेम से कृष्ण के पास जाकर उन्हें ही अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया। प्रह्लाद ने पिता का, विभीषण ने भाई का, भरत ने माता का, बली ने गुरु का, और गोपियों ने पति का त्याग किया। सबका मंगल हुआ। क्योंकि वो त्याग भगवान के लिए था। मायिक लोगों के लिए धर्म का त्याग करोगे तो नरक जाना पड़ेगा।

इसका कारण यही है कि मायिक या भौतिक वस्तु और व्यक्ति से अंतःकरण गंदा होता है। गंदा का अर्थ है उसमें मायिक तत्व भर जाना। जबकि असली सुख अमायिक, अभौतिक — अर्थात् जो भौतिक न हो — वह दिव्य होता है। उसके लिए मन को मायिक वस्तुओं और व्यक्तियों से खाली करना ही पड़ेगा — आज नहीं तो हजार जन्म बाद करना ही पड़ेगा। ऐसे खाली मन को ही शुद्ध मन कहते हैं। शुद्ध मन को पहले दिव्य बनाया जाता है। फिर उस दिव्य मन में दिव्य शक्ति दी जाती है, जिससे मन दिव्य प्रेम को धारण कर सकता है। यदि मायिक मन में दिव्य प्रेम डाला जाए तो शरीर की हड्डी-पसली का भी पता नहीं चलेगा, इतनी गरमी दिव्य प्रेम में होती है। तात्पर्य यह है कि यदि भगवत् क्षेत्र में चलना है तो मायिक जगत का चिंतन न करके उसकी जगह दिव्य भगवान का चिंतन करने का अभ्यास करना पड़ेगा। इससे मन शुद्ध होगा और हमारी शाश्वत सुख की समस्या हल होगी। शाश्वत सुख दायिनि परा भक्ति कैसे मिलेगी? नारद जी बताते हैं —

**तत्तु विषयत्यागात् सङ्गत्यागाच्च।**
**अव्यावृत्तभजनात्।**
**लोकेऽपि भगवद्गुणश्रवणकीर्तनात्।**
**मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवद्कृपालेशाद्धा। (नारदभक्तिसूत्र 35- 38)**

वह भक्ति मायिक सुख का त्याग, मायिक संग का त्याग, अखण्ड भजन, भगवद्गुण श्रवण और कीर्तन से प्राप्त होती है। मुख्यतया महापुरुषों की कृपा से या भगवद्-कृपा के लेश मात्र से भक्ति मिल सकती है।

**भक्त्या ह्येव मनुष्याणां निःसङ्गेनार्थदर्शनम्।**
**भावग्राही जनार्दनः भक्तिमेव गृहीत्वा स्वम्॥ (भागवत 11.14.12)**

**सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा॥ (नारदभक्तिसूत्र 2)**
**भक्त्याऽहमेकया ग्राह्यः श्रद्दया आत्मा प्रियः सती॥ (भागवत 11.14.21)**

भगवान कहते हैं — मैं केवल भक्ति से मिलता हूँ।

**व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का।**
**का जातिर्विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्।**
**कुब्जायाः किमु नाम रूपमधिकं किं तत्सुदाम्नो धनम्।**
**भक्त्या तुष्यति केवलं न तु गुणैः भक्तिप्रियो माधवः॥**
**(हरिभक्तिविलास 10.283)**

वालि का क्या आचरण था? ध्रुव की क्या उम्र थी? गजेन्द्र (हाथी) कौन-सा विद्वान था? विदुर कौन-सी उच्च जाति का था? उग्रसेन क्या कोई पराक्रमी था? कुब्जा का क्या रूप था? सुदामा कौन-सा धनवान था? भगवान धन, जाति, रूप, ज्ञान, शक्ति, गुणवत्ता, कौशल ये सब नही देखते। वस प्रेम से संतुष्ट होते है। भगवान भक्ति से प्रसन्न होते हैं। भगवान को केवल प्रेम से ही प्राप्त किया जा सकता है।

**यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ।**
**तस्यैते कथिताः अर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥**
**(श्वेताश्वरोपनिषद् 6.23)**

जैसी भक्ति भगवान की हो, वैसी ही भक्ति गुरु की हो। तभी परा भक्ति प्राप्त होती है।

**भक्तिः परा भवति नैव साध्यते महाभागवतोऽस्य भावः॥**
**(भागवत 11.2.45)**

**ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।**

**समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥ (भगवद्गीता 18.54)**

हम जो भगवान की भक्ति (प्यार) करते हैं उसे साधन-भक्ति कहते हैं। यह तो बस अंतःकरण शुद्धि का कार्य करती है। उसके बाद भगवान कृपा से अपनी स्वरूप-शक्ति द्वारा उस मन को दिव्य बनाते हैं और अपनी परा भक्ति प्रदान करते हैं। इस भक्ति के वश में भगवान रहते हैं। जब मन दिव्य बनता है तो दिव्य सुख का पान दिव्य भक्ति द्वारा करता है और सदा के लिए सुखी होकर भगवान के लोक में रहता है।

**ये के च पृथिव्यामन्तरिक्षे ये दिवि शुभ्रा।**
**येन देवा ओजसा प्रावृतासो भावेन तद्धो भवन्ति॥ (ऋग्वेद 1.164.39)**

भगवान को जितनी मात्रा में जिस भाव से भजोगे, उतनी ही मात्रा में उसी भाव से उनका अनुग्रह होगा। भाव बढ़ाने के लिए आपको भगवान के रूप का ध्यान करना पड़ेगा। मन से आप भगवान का जो रूप जितना सुंदर बनाना चाहें, बनाइए। उनसे मन से ही रिश्ता बनाइए। शास्त्रों में चार प्रमुख रिश्ते बताए गए हैं — भगवान को अपना स्वामी, सखा, सुत (पुत्र), या प्रियतम मानिए।

मन से ही भगवान का उसी प्रकार चिंतन कीजिए जैसे आप संसारी रिश्तों में व्यवहार करते हैं। मनचाहे कपडे, आभुषण पहनाइए। मनचाही लीला रचिए। कभी मिलन का तो कभी विरह का भाव लाइए। उनसे मिलने की व्याकुलता बढ़ाइए। भगवान अनन्य, निष्काम, निरंतर प्रेम करिए। भगवान से ही प्रेम करे (अनन्य प्रेम)। भगवान से कोई भी संसारी वस्तु या मोक्ष न माँगें (निष्काम प्रेम) — केवल उनके सुख के लिए उनकी सेवा और उनका प्रेम माँगें। उनका चिंतन हमेशा करें (निरंतर प्रेम)। इसके लिए आप मूर्ति आदि का सहारा ले सकते हैं। पूजा, जप, तप, व्रत,

योग आदि की आवश्यकता नहीं। मूर्तिपूजा से भी अधिक लाभकारी है भगवान-नाम का संकीर्तन। चाहे जो साधन करिए स्मरण परमावश्यक है।

**मनेर स्मरण प्राण। (गौरांग महाप्रभु)**
**अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।**
**यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।। (गरुड पुराण)**

स्मरण करने में कोई कायदा कानून भी नही। पवित्र हो चाहे अपवित्र हो, चाहे जिस अवस्था में हो, गंगास्नान किये हो या घोर गंदगी लपेटे हो, भगवान स्मरण तन और मन दोनो शुद्ध करता है। भगवान स्मरण करने में शास्त्र किसी भी प्रकार बंधन नही डालते। इसलिए जब भी जैसे भी हो भगवान का स्मरण करिए। वेदव्यास कहते है।

**तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्।**
**स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे॥ (भागवत)**
**येन केन प्रकारेण मनो यस्मिन्निवेश्यते।**
**तद्गुणैः परमाराध्यः पुरुषः प्रकृतेः परः॥ (भगवान कपिल)**
**येन -केन प्रकारेण मनः कृष्णे निवेशयेत। (भक्ति रसामृत सिंधु)**

जिस किसी तरीके से आपका मन भगवान में लगे उसे अपनाइए । तरीका चाहे शास्त्रों में वर्णित हो या ना हो। एक साधक जंगल में एक तूटे कंगे से फूटे आईने में अपने बाल ठीक करे। फिर बाहर देखे श्रीकृष्ण आये कि नही। फिर नही आये ये देख कर रोना शुरु कर दे। ये साधना कौनसे शास्त्र में लिखी है? लेकिन भगवान को उन्हे दर्शन देना पडा। स्मरण लगातार हुआ तो अंतःकरण शुद्ध हुआ तो भगवान प्रकट हो गए। एक सिद्धांत हमेशा स्मरण रहे —

भगवान, उनके नाम, रूप, गुण, लीला, धाम और उनके संत को छोड़कर कोई भी किसी भी कारण मन में आएगा तो वह मन को गंदा ही करेगा। भगवान के विपरित सुनना, पढना, वेद शास्त्र एवं संत और भगवान की निंदा करना, निंदा सुनना, अवहेलना करना, विषय सुख में लिप्त रहना, भगवान के कार्य में शंका करना, उन कार्यों का मायिक संसारी अर्थ करना, समय, भाग्य, भगवान पर दोषारोपण करना, संतों में जाति, स्थान, भाषा के आधार पर भेद करना ये सब अपराध कुसंग  कहलाते है।

कुसंग आपकी साधना, सेवा को खा जायेगा। साधना के साथ साथ कुसंग से बचना भी अति आवश्यक है। साधनावस्था में खाना पीना सोना बोलना उतना ही करना चाहिए जितना आवश्यक है। छे घंटे से जादा नही सोना चाहिए। सात्विक आहार करना चाहिए। कपडे भारतीय सभ्यतापूर्वक हो। कम से कम बोलो और मधुर भाषा का प्रयोग हो। परदोष ना देखो, ना सुनो। परनिंदा ना करो। जैसे हम वैसे सब मायाधीन जीव। सब में सब दोष काम, क्रोध, लोभ, द्वेष, ईर्षा, पाखंड तब तक रहेंगे जब तक भगवान नही मिलते। जिस दोषयुक्त का चिंतन होगा वो आदमी, वो दोष धीरे धीरे मन में घुसेगा। आपको तो मन मायिक वस्तु और व्यक्तिओं से खाली करना है। यदि बार बार किसी वस्तु या व्यक्ति में मन जाने लगे या दुर्भावना होने लगे तो उसी में श्रीकृष्ण को खडा करिए क्योंकि श्रीकृष्ण सब के अंदर और बाहर भी सब चीजों मे व्याप्त है। लापरवाही ना हो। करेंगे करेंगे नही, तुरंत करना प्रारंभ करो।

**न श्वः श्वमुपासीत को हि पुरुषस्य श्वो वेद ।**
**अध्रुवं जीवितं लोके न ध्रुवं प्राणधारणम् ॥ (महाभारत )**

कल कल मत करो मनुष्य का कल कौन जानता है? प्राण कब निकल जायेंगे पता नही। क्या यमराज ने कोई वादा किया है?

पता नही अगला क्षण मिले ना मिले। अपना परलोक बना लो। भगवत् स्मरण कर लो। नियम से कीर्तन, आरती, तत्वज्ञान का श्रवण, वाचन, मनन करने से ईश्वरीय क्षेत्र में तेजी से आगे बढ़ोगे। एक बार पढने या सुनने से काम नही चलेगा। इसके लिए वेदव्यास ने एक सूत्र बनाया **आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ( ब्रम्हसूत्र 4.1.1)** उपदेश को बार बार सुनो पढो। कलियुग में जहा संसारी वातावरण अतिप्रचुर मात्रा में है वहा ईश्वरीय उपदेश गरम तावे पर डाली गयी पानी की बूंद की तरह दिमाग से उड जायेगा। याज्ञवल्क्य ने भी मैत्रेयी को कहा - **श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयी ( बृहदारण्यक उपनिषद्)** उपदेश को सुनो, उसका मनन करो, उस पर अमल करो। जब तक भगवत् प्राप्ति ना हो तब तक ये अहंकार ना आने पावे कि हमे सब पता है। पता है ये तब बोलो जब वो उपदेश सदा दिमाग में हो। उसके अर्थ के अनुरूप हमारा आचरण हो। नही तो उस तोते जैसा हाल होगा जिसको एक भले आदमी ने याद करवाया था कि पीछे से बहेलिया आ रहा है, वो जाल फैलायेगा, उस पर बैठना नही, नही तो पकडे जाओगे। जब बहेलिया आया तो तोता ये गाते गाते जाल पर बैठा। इतना ही नही पिंजरे में भी यही गा रहा था। इसलिए उपदेशानुसार हमेशा आचरण होने पर ही सोचना हमे पता है।

जब आपने समझ लिया कि संसार में सुख नहीं है, तो संसारी धन, पुत्रादि कामना से किसी बाबा के पास जाना मूर्खता है। और यह भी समझो कि कोई बाबा प्रारब्ध के विपरीत कुछ नहीं दे सकता। खुद भगवान प्रारब्ध के विपरीत कर्म नही करते। अगर तो श्रीकृष्ण अभिमन्यु को, श्रीराम अपने पिता दशरथ को क्यों न बचाते? भगवान अपने ही कानून पर लाल स्याही नही चलाते। भगवान कानून के विपरीत कोई बाबा प्रारब्ध में ना होते हुए भी कुछ दे ही नही सकता। ऐसी ढोंगी बाबा ने मानो सौ लोगों को आशीर्वाद दिया, उसमें में कुछ ही लोगों की प्रारब्धवश इच्छा पूर्ती हुई जिससे उनको धोखा हुआ कि आशीर्वाद से काम बना। ऐसे

लोगों के प्रचार से बाबा की दुकान चल पडी। जिनकी इच्छा पूरी नही हुई वे चूप बैठ गये। बहुत बार ढोंगी बाबा के ढोंगी चेले झूठमूठ का प्रचार कर लोगों को ठगते है। ऐसे बाबाओं से सावध रहिए। नौकरी, पुत्र, धन या और कोई भी संसार प्राप्ति के लिए किसी भी बाबा के पास कभी भी मत जाइए। तांत्रिक बाबाओं से भी दूर रहिए। ये दंभी बाबा बस लोगों को लुटने का काम करते है। यदि आप इस प्रकार के किसी बाबाओं के पास पहले से जा रहे तो तो उनको छोड़ने में जरा सी भी देरी ना करिए। डरिए मत। आपका कोई कुछ नही बिगाड पायेगा क्योंकि आप सर्व समर्थ भगवान की शरण में गए हो। जाने रहिए प्रारब्ध हमारे पूर्व जन्म में किये कर्मों का फल है। और कर्म के लिए नियम है

**अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।**
**नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि॥ (ब्रह्मवैवर्त पुराण प्रकृति खंड, 37.16)**

जीव को अपने द्वारा ही किए गए शुभ और अशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पडेगा। ये भी समझे की क्रियमाण कर्म करने का अधिकार केवल मनुष्य योनि में है। देवता भी मनुष्यों से अन्य बातों में श्रेष्ठ होते हुए भी अपने भविष्य के लिए या भगवत् प्राप्ति के लिए कोई कर्म नही कर सकते। बाकि सब योनियां भोग योनि है। मनुष्य जन्म में किये हुए कर्मो का फल भोगने के लिए बाकि सब योनि है। मनुष्य जन्म कर्म योनि और भोग योनि दोनो है। मनुष्य को प्रारब्ध भोगना भी पडेगा और मनुष्य क्रियमाण कर्म करके अपना भविष्य भी बनायेगा। बिना भोगे कर्म का फल करोड़ों कल्पों के बाद भी नष्ट नहीं होता। एक कल्प मतलब 4 अरब 32 करोड वर्ष । ऐसे कई कल्प निम्न योनियों में जाने के बाद मनुष्य जन्म मिलेगा। लेकिन जैविक क्रियायों को लेकर सब योनियां समान है।

**आहारनिद्राभयमैथुनं चसमानमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।**

**धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥ (हितोपदेश 1.2)**

खाना पीना सोना संभोग करना इन क्रियाओं में मनुष्य पशु समान ही है। जरा सा भी अंतर नही। यही सब मनुष्य जन्म में किया तो मनुष्य जन्म का आपको कुछ लाभ ही नही हुआ। बल्कि नुकसान हुआ क्योंकि आपको फिर से उन योनियों में जाकर दुःख भोगना पडेगा। मनुष्य जन्म में आप उस दरवाजे के पास आते हो जो सीधा भगवान के गोलोक में खुलता है। आपने जाना ही नही कि मनुष्य जन्म ये भगवान से मिलने का एकमात्र मौका है। इंद्रिय सुख तो निम्न योनियों में भी मिलता है। जो सुख आपको पंच पकवान खाने से मिलता है वही सुख गाय को हरी घास खाने में मिलता है। मनुष्य भगवान की भक्ति करने से ही मनुष्य कहलाता है। वरना पशु और मनुष्य एकसमान है। पशु नही बनो। मनुष्य बनो।

**इह चेदवेदीदथ आत्मानं प्राक् शरीरात् ।**
**ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ॥ (कठोपनिषद् 2.3.4)**

इस मानव जन्म में यदि भगवान से प्यार नही किया तो बहुत हानि होगी। कई कल्प दुःख भोगने के बाद मनुष्य जन्म मिलेगा। और फिर जन्म भारत में मिले और भगवत् तत्वज्ञान भी मिले और हम भक्ति करे ये बनाव बने ना बने। इसलिए वेद कहता है

**उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत॥ कठोपनिषद् (1.3.14)**

उठो, जागो अपना अंतिम लक्ष्य प्राप्त कर लो। मनुष्य जन्म का तो एक क्षण का भरोसा नही। नवजात बच्चे से लेकर सब उमर के लोग मरते है। हमारी आयु क्या हमें पता है? वेद कहता है मनुष्य जन्म महत्व जब भी समझ में आये तुरंत अंतःकरण शुद्धि का प्रयास आरंभ करो। ये मत सोचो हमे तो भगवान नही मिलेंगे। वो

हमारे गंदे अंत:करण में वही बैठे है, बस मन साफ होने पर प्रकट होंगे।

**कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह ।**
**दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमार्थदम् ॥ (भागवत 7.6.1)**
**युवैव धर्मशील: स्यात् अनित्यं खलु जीवितम्।**
**को हि जानाति कस्याद्य मृत्युकालो भविष्यति॥ (महाभारत)**

प्रह्लाद ने कहा भक्ति बचपन से ही शुरु करो। बचपन बीत गया तो जवानी से करो। बुढापे में शरीर साथ नही देगा। मन संसार में बहुत आसक्त होगा। भगवान की भक्ति में ये दोनो चीजे बाधा डालेगी। जल्दी करो पता नही कब यमराज हमारा टिकिट काट दे। बुढापे में तो जो कुछ हो सकता है वो तो करो ही। मानव जन्म क्षणभंगुर है, किस क्षण मृत्यु होगी पता नही। और ये दुर्लभ भी है। आसानी से दुबारा नही मिलने वाला। फिर तो चौरासी लाख घुमो। वहां तो बस एक प्राणी दुसरे को अपना भोजन बनाता है। आप भी कई बार ये भोजन बनने का दु:ख झेल चुके हो। यदि मनुष्य जन्म में जरूरी भक्ति नही की तो फिर जाना पडेगा वही।

**कल करे सो आज कर, आज करे सो अब**
**पलभर में मृत्यु होएगी, फिर करेगा कब ?**

करना क्या है? भगवान से प्यार। वैसे देखा जाए तो काम, क्रोध, भय, स्नेह या किसी भी भावना से भगवान का चिंतन करने से मन शुद्ध होता है।

**कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च।**
**नित्यं हरौ विदधतां न बन्धो न विवर्धनम्॥ (भागवत 11.5.36)**

शुद्ध भगवान किसी भी प्रकार मन में आएँगे तो मन शुद्ध ही

करेंगे।

**कामात् गोप्यो भयात् कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः।**
**सम्बन्धाद्वृष्णयः स्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं विभो॥ (भागवत 7.1.30)**

गोपियों ने काम से, कंस ने भय से, शिशुपाल आदि राजाओं ने द्वेष से, पाण्डवों ने स्नेह से, और नारद आदि ने शुद्ध भक्ति से भगवान श्रीकृष्ण को प्राप्त किया। क्योंकि उनके मन का ऐक्य पूर्णतः श्रीकृष्ण में हो गया था। इसलिए हमारी भावनाओं को भगवान की ओर मोड़ देना चाहिए ताकि मन शुद्ध हो और हमारी शाश्वत सुख की समस्या का समाधान हो।

**विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्यते।**
**मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते॥ (भागवत 11.14.27)**

चिंतन ही सब कुछ है। संसारी सुख का चिंतन करोगे तो संसार में फँसोगे, और भगवान का चिंतन करोगे तो शाश्वत सुख पाओगे।

**ध्यायतः विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।**
**सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥**
**क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।**
**स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥ (भगवद्गीता 2.62–63)**

संसारी सुख के विषयों के चिंतन से विनाश ही होता है। विनाश का अर्थ है दु:ख-प्राप्ति, जो नरकादि योनियों के भ्रमण में मिलती है। हम जिसका संग करते हैं, वह हमारे चिंतन पर असर डालता है। खराब संग से खराब विचार आएँगे और असली संत का सत्संग करने से भगवत्-विषयक विचार आएँगे।

**तं भ्रंशयामि सम्पद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम् ॥ (भागवत 10.27.16)**
**यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः ।**
**ततोऽधनं त्यजन्त्यस्य स्वजनाः दुःखदुःखितम् ॥**

भगवान कहते है मैं जिस पर कृपा करता हूँ उसके धन संपत्ति वैभव छीन लेता हूं, तो उसका अंहकार जाता है। ये देखने में भले ही विपत्ति लग रही हो पर ये मेरा अनुग्रह ही है क्योंकि जो व्यक्ति अब तक ये समझ रहा था सब उसके मुआफिक है, उससे जब वैभवहीन और प्रतिष्ठाहीन होने से स्वजन साहित सब मुंह मोड लेते है, उसकी अवहेलना करते है तो उसे अपनी असलियत पता चलता है कि लोग उसे उसके वैभव के कारण मानते थे। वो जान लेता है संसार में सब स्वार्थी है और वो बस अनंत जीवों में से एक जीव है, फिर भगवान की ओर चलकर अपना कल्याण कर लेता है।

**मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।**
**बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्॥ (अमृतबिन्दु उपनिषद् 6.34)**

मन ही बंधन और मोक्ष का कारण है। और मन का कार्य है चिंतन और स्मरण। इसलिए चाहे कुछ भी करो — कीर्तन, जप, पूजा, मंदिर-दर्शन आदि — स्मरण अवश्य होना चाहिए। श्रीकृष्ण कहते हैं

**अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।**
**तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥ (गीता 8.14 )**

जो अनन्य भाव से केवल मेरा या मेरे नाम, रूप, लीला, गुण, धाम, संत का ही स्मरण करता है (किसी देवी-देवता या मनुष्य का

नहीं) और निरंतर नित्य स्मरण करता है, वह मुझे आसानी से प्राप्त कर लेता है।

**एतावान् साधनं धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः।**
**श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं महतां गतेः॥ (भागवत 7.5.23)**

सब साधनों में श्रवण, कीर्तन और स्मरण श्रेष्ठ हैं। लेकिन इन तीनों में भी स्मरण सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि स्मरण से ही मन शुद्ध होता है। श्रवण और कीर्तन केवल सहायक हैं, और बिना स्मरण के ये लक्ष्य-प्राप्ति नहीं करा सकते। फिर भी संसारी बातों में उलझने से श्रवण-कीर्तन अच्छा ही है।

**म संकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।**
**प्रणामदुःखशमनं नमामि हरिमादरात्॥ (भागवत 6.2.12)**

भगवान का नाम-संकीर्तन सभी पापों का और समस्त दुःखों का नाश करता है।

**कलियुग केवल नाम अधारा।**
**सुमिरि सुमिरि नर उतरहि पारा॥ (रामचरितमानस, बालकाण्ड)**
**कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।**
**गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥ (रामचरितमानस)**

यदि मनुष्य विश्वास करे, तो कलियुग के समान दूसरा युग नहीं है। क्योंकि इस युग में केवल भगवान के नाम, रूप, लीला, गुण, धाम का कीर्तन करने से मनुष्य बिना परिश्रम अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेता है।

**एहिं कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत**

**पूजा॥**
**रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि॥ ( रामचरितमानस)**

कलियुग में योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत या पूजा इन उपायों से काम नहीं बनेगा। केवल भगवान का निरंतर स्मरण करना, उनके गुण गाना और उनके गुणों की कथाएँ सुनना ही एकमात्र और सरल मार्ग है।

**हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।**
**कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यता॥**
**(कलिसन्तरणोपनिषद्)**

कलियुग में भगवान तक पहुँचने का केवल एक ही मार्ग है — हरि-नाम का कीर्तन, हरि-नाम का कीर्तन, हरि-नाम का कीर्तन। इसके अलावा कोई मार्ग नहीं, कोई मार्ग नहीं, कोई मार्ग नहीं। मूर्तिपूजा का भी वर्णन पुराणों में है।

**देहावयव-विभागेन द्रव्याणामपि विभ्रमान्।**
**शिलाया धातुरूपायाः चित्रस्य परिचिन्तयेत्॥ (भागवत 11.27.12)**

मूर्तिरूप भगवान के अंगों की विशेषताओं के अनुसार पूजा-द्रव्यों का उपयोग करे, और शिला-रूप, धातु-रूप तथा चित्र-रूप की मूर्ति का पूजन उसी प्रकार विचारपूर्वक करे। भागवत में ही मनोमयी (मन से बनाई हुई) आदि नौ प्रकार की मूर्तियों का भी वर्णन है। तथा मंदिर, पूजा-विधि इन सब का भी वर्णन है। पुराण क्या है?

**वेदार्थं सारतया ज्ञेयं पुराणं ब्रह्मसम्मितम्॥ (मत्स्यपुराण 53.65)**

**वेदानां विस्तारकं पुराणम्॥ (ब्रह्माण्डपुराण पूर्व भाग 1.4)**
**इदं भगवता प्रोक्तं ब्रह्मणेऽहं ब्रवीमि ते।**
**वेदानां अर्थोऽयं रहस्यम्॥ (भागवत 2.9.31)**

पुराण वेद तथा उपनिषदों का अर्थ हैं। सृष्टि में वेदों से पहले पुराणों का प्राकट्य हुआ। वेद और पुराण अनादि माने जाते हैं। वेद व्यास-रचित भी माने जाते हैं। इसलिए सनातन धर्म में दोनों की एक-सी मान्यता है। तात्पर्य यह है कि भगवान आनंद हैं। वे साकार भी हैं और निराकार भी। भगवान श्रीकृष्ण के लिए भागवत कहती है - **"रसतमः॥ परमः॥"** ब्रह्म के लिए कहा गया — **"रसो वै सः॥"** वह रस है, लेकिन भगवान श्रीकृष्ण ने जो महारास किया उसके लिए कहा गया **रसतमः॥ परमः ॥ ( भागवत 10.33.6)** वह अत्युच्च कोटि का अंतिम रस है।

**ब्रह्मानन्दो भवेदेष चेत्परार्द्धगुणसिद्धः।**
**नैति भक्ति-सुखमबोधेः परमाणुतुलमपि॥**
**(भक्तिरसामृतसिन्धु पूर्व विभाग 11.38)**

यदि ब्रह्मानंद अर्थात् ब्रह्म-तेज में विलीन होने का आनंद जिसे कैवल्य मोक्ष या मुक्ति कहते है, उसे यदि एक परार्ध से गुना गुणा किया जाए, तो भी वह भक्ति में अनुभव किए जाने वाले दिव्य प्रेम रूप आनंद सागर के एक अणु अंश के बराबर भी नहीं। इसीलिए इस परम चरम रस के अनुभव के लिए जिनको ब्रह्मानंद प्राप्त हुआ है, वे परमहंस लोग भी ब्रजभूमि में वृक्ष, लता, पत्ता आदि बन गए।

लेकिन हमारा प्रश्न यह था कि क्या भगवान को कुछ प्राप्तव्य था जिसके कारण उन्होंने सृष्टि का प्राकट्य किया?

**न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन॥ (गीता 6.8)**

भगवान ने गीता में कहा मुझे कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं।

**न तस्य कार्यं करणं च विद्यते।**
**न तस्य समानोऽभ्यधिकश्च दृश्यते।**
**परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते।**
**स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥ (श्वेताश्वरोपनिषद 3.22)**

भगवान को कुछ करने की आवश्यकता नहीं है (सृष्टि आदि)। न उसका कोई समान है, न उससे बढ़कर कोई है। वही सबसे बड़ा है। उसके पास परा शक्ति (दिव्य शक्ति) स्वाभाविक रूप से है।

कर्म तो तब किया जाता है जब कुछ प्राप्तव्य हो। भगवान तो पूर्णकाम, आत्माराम है। उनको बाहर से किसी चीज की कोई आवश्यकता नहीं। उनको कुछ भी प्राप्तव्य नही। फिर जब भगवान अवतार लेते हैं और तमाम सारे कर्म करते हैं, तो वे क्या हैं? वो लीला कहलाते है। लीला का मतलब है नाटक। नाटक की स्क्रिप्ट पहले बनती है इसलिए सब अवतारों की कथा पुरणों में अवतरों से पहले विद्यमान है। लीला करने का सबसे महत्वपूर्ण कारण है कि संसारी लोगों को भगवान में मन लगाने के लिए आसानी हो। कहानियाँ सुनना, पढ़ना, देखना सब को अच्छा लगता है। रामायण, महाभारत या भगवान के अवतारों की कथा पढ़ने, सुनने में या टीवी, पिक्चर हॉल में लोग जितना समय जितनी लगन से देखते है उतनी लगन से उतना समय कोई रूपध्यान कर सकेगा? कितने लोग उतना समय कीर्तन आदि में देंगे? कर्म करने की कोई भी आवश्यकता ना होने पर भी जीवों के भले के लिए कर्म करना कृपा है।

भगवान तो खुद ही आनंद है। वो आनंद सदा रहने वाला है तथा चेतन है। ज्ञानशक्ति युक्त है तथा वो आनंद हमारे जैसा चलता है,

बोलता है, सोचता है, डिसिजन लेता है इसलिए उसे चेतन कहा गया। मतलब ये हुआ कि आनंद की स्याही से चित्र बना कर उसमें आनंद के रंग भरो, उसमें आनंद की जान भर दो। ऐसा जो आनंद से लबालब भरा हो उसे भगवान कहते है। उस आनंद का कभी आरंभ नही हुआ - ना ही उसका कभी अंत होगा। वो अनादि अनंत है इसलिए सत कहा गया। सत-चित-आनंद इन शब्दों से भगवान का एक नाम बन गया — सच्चिदानंद।

यदि सत्ता की बात करे तो सब स्थावर-जंगम उन्हीं के आधीन है। वो सबके स्वामी हैं और बाकी सब स्थावर और जंगम उनके शरीर-स्वरूप उनके दास हैं।

**यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्। (ऋग्वेद 1.164.46)**
**मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्। (श्वेताश्वरोपनिषद 4.10)**
**सहजहिं चले सकल जग स्वामी। (रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड )**
**जगन्नाथ केवल मनुष्यों के ही नहीं अपितु सकल स्थावर-जंगम प्राणियों के भी नाथ हैं। (अधरपणा नीति)**
**भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।**
**अहंकार इीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥**
**जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।**
**एतद्विन्नां प्रकृतिं विद्ध्यपरामिति मे पराम्॥ (भगवद्गीता 7.4–5)**

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, मन, बुद्धि, अहंकार इन सब अचेतन, निर्जिव या जड पदार्थों को माया कहते है। इनमें जीवन नही होता। आत्मा के कारण शरीर, मन इ. जीवित रहते है। भगवान कहते है कि माया ये मेरी अपरा (निकृष्ट ) प्रकृति (शक्ति) हैं तथा जीव मेरी परा (श्रेष्ठ) शक्ति है। अपरा यानि कि जड़ जिसमें जीवन

न हो। परा का मतलब जिसमें चेतना या जीवन हो। तात्पर्य यह कि भगवान सबके स्वामी हैं। इस सृष्टि में जो कुछ भी दिखाई दे — जड़ या चेतन, स्थावर या जंगम — वह सब भगवान की शक्ति है। शक्ति बगैर शक्तिमान के नहीं रह सकती, इसलिए भगवान सब जगह व्याप्त हैं।

**ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। ( ईशोपनिषद 1)**
इस सम्पूर्ण जगत में जो भी है, वह ईश्वर से व्याप्त है। उससे बड़ा कोई नहीं।
**जगत्सर्वं शरीरं ते वपुस्ते जगतां पतेः।**
**भूतग्राममयं विश्वं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ ( रामायण, उत्तरकाण्ड)**

भगवान जगत के स्वामी हैं। संपूर्ण जीव और जगत उनका शरीर है। सब जीव और अचर सृष्टि उनमें स्थित हैं। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने इस बात का प्रत्यक्ष दर्शन अपने विश्वरूप में अर्जुन को कराया था।

**बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च। (गीता 13.16)**
**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। (गीता 18.61)**
**अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः। (गीता 10.20)**
**प्रभु व्यापक सर्वत्र समाना। (रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड )**
**एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। (अथर्ववेद 10.8.27)**
**न तस्य कार्यं करणं च विद्यते।**
**न तस्य कश्चनच न तस्य च विद्यते।**
**तम् ईश्वराणां परमं महेश्वरम्। ( श्वेताश्वरोपनिषद 6.8)**
**एष आत्मा स्वतन्त्रः। ( बृहदारण्यकोपनिषद 4.4.12)**

**मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनञ्जय। (गीता 7.7)**
**यस्मात् परं परतरं नास्ति किञ्चित्**
**यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित् । (श्वेताश्वर उपनिषद् 3.9)**

इन सबका भावार्थ यह कि ईश्वर सब जीवों के हृदय में स्थित हैं। वो सबके अंदर भी हैं और सबके बाहर अचर जगत में भी व्याप्त हैं। वही इस सृष्टि (जीव और माया) के अध्यक्ष हैं। माया और जीव उस ईश्वर के अधीन हैं। ईश्वर किसी के अधीन नहीं। उससे परे कुछ भी नहीं। वह परम स्वतंत्र है। कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थ। ऐसा स्वतंत्र कि जो चाहे करे, जो चाहे न करे, जो चाहे उल्टा करे। ईश्वर सर्वव्यापक हैं और सबका स्वामी भी। वह अनंत जीवन, अनंत ज्ञान और अनंत आनंद से युक्त हैं। उनको कुछ भी कार्य करने की आवश्यकता नहीं। उनके लिए कुछ पाना शेष नहीं। उसी की शक्ति पाकर सब चर और अचर कार्यरत हैं। तो उस ईश्वर कौन कौनसी वस्तु मुल्य में देगा?

अब किसी कर्म करने के लिए कुछ प्रयोजन या उद्देश्य होना जरूरी है। प्रायः पाँच प्राप्तव्य हैं — जीवन, ज्ञान, स्वतंत्रता, सत्ता (सब पर शासन करना) तथा सुख या आनंद। इसमें आनंद सर्वोच्च है। बाकी सब चीजें आनंद या सुख पाने के लिए की जाती हैं। हमने देखा कि भगवान के पास ये सब चीजें हैं। और वो भी कभी खत्म न होने वाली अर्थात शाश्वत और अनंत मात्रा की हैं, जिनकी कोई सीमा नहीं उसको फिर सृष्टि करने की क्या ज़रूरत महसूस हुई? उस आनंदमय भगवान ने इस दुःखमय सृष्टि का सृजन क्यों किया? इसका उत्तर शाण्डिल्य मुनि ने दिया। भगवान की क्रिया का मुख्य कारण करुणा है।

**मुख्यम् तस्मै कारुण्यम्। (शांडिल्य भक्ति सूत्र 49)**
**अकारण करुणा सागर। (रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड)**

**कारुण्य रूपं करुणा करंतम्। (रामरक्षा स्तोत्र 34)**
**तन्मयायानुयुगं नूनं कारुण्यं च तदात्मनः॥ (भागवत 10.14.8)**
**तत्त्वं परं यन्मम चात्मदीपं अकारणं करुणया। (भागवत 10.14.35)**

भगवान श्रीकृष्ण की लीला करुणा से प्रेरित थी, अनंत रूप धारण कर एक गोपी के साथ एक कृष्ण बन कर रास रस प्रदान किया। उनको बाहर से किसी की भी जरूरत ना होते हुए भी उन्होंने सब पर प्यार लुटाया ताकि हमे विश्वास हो कि गोप, गोपी, मैय्या, नंदबाबा की तरह हमे भी प्यार मिल सकता है। भगवान अकारण करुण हैं। भगवान अपने स्वभाव से करुणामय हैं, दयालु हैं, कृपालु हैं। अकारण करुणा से युक्त कर्म कृपा कहलाता है। कृपा वह है जिसमें कर्म केवल दूसरे के हित के लिए किया जाता है। बदले में किसी चीज़ की अपेक्षा नहीं होती। भगवान को कोई कुछ दे ही नहीं सकता क्योंकि जो भी इस सृष्टि में है उसका सृजन भगवान ने ही किया है। जिसके पास जो भी है वह सब भगवान से ही मिला है। अर्थात भगवान को अपने जीवन के बदले में या अन्य प्राप्त वस्तुओं के बदले में देने के लिए जीव के पास अपना कोई सामान नहीं। तात्पर्य यह कि भगवान ने अपने अकारण करुण स्वभाव से ही इस सृष्टि को प्रकट किया।

तो उत्तर मिल गया कि भगवान सृष्टि का निर्माण हमारी हालत पर तरस खाकर किया। क्या हालत? महाप्रलय में सब जीव भगवान के महोदर में लीन थे। उनको सुख नहीं मिला था। ऐसे ही केवल कारण शरीर में बद्ध होने के कारण सुख पाने के लिए कुछ नहीं कर पा रहे थे। शरीर तीन प्रकार के है। एक - स्थूल शरीर जिससे सब जीव इस संसार में सुख प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है। दूसरा - सूक्ष्म शरीर। जब हम सपना देखते है तो हमारा स्थूल शरीर तो खाट पे पडा होता है। जिससे हम सपने में विचरण करते है वो सूक्ष्म शरीर है। कारण शरीर केवल इच्छाओं और वासनाओं का

बना होता है। महाप्रलय में जीव कारण शरीर मे था। इंद्रियाँ, मन, बुद्धि, स्थूल शरीर आदि कुछ भी नहीं था। भगवान को उनकी दया आ गई और भगवान ने अपने अकारण करुणा स्वभाववश सृष्टि की रचना की।

इस बात का भी पता चल गया कि सृष्टि का निर्माण इसलिए किया गया कि सब जीव सुख की प्राप्ति करें। आप कहेंगे कि लोग पैसा, स्त्री, संतान आदि भी प्राप्त करना चाहते हैं। लेकिन यह जान लेना ज़रूरी है कि इन सबकी प्राप्ति अपने सुख के लिए ही होती है। जैसे कि भागवत कहती है —

**सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैव वल्लभः।**
**इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभतयैव हि॥ (भागवत 10.84.13)**

सृष्टि के उपक्रम में सर्वप्रथम भगवान ने अपने नाभि से ब्रह्मा को प्रकट किया। ब्रह्मा को तो यह भी पता नहीं था कि वह कहाँ से आया है। तब भगवान ने वेदों को प्रकट किया। लेकिन ब्रह्मा वेदों का अर्थ भी नहीं समझ पाया तो भगवान ने उसके हृदय में जाकर उसे वेदों के अर्थ से अवगत कराया और फिर ब्रह्मा ने सृष्टि का निर्माण किया। खैर हमें फिलहाल सृष्टि की रचना की डिटेल में नहीं जाना है।

अब सृष्टि का जो उद्देश्य है — जीवों को सुख प्राप्ति हो — वह कैसे साध्य हो? इसके लिए भगवान ने वेदों में धर्म का निरूपण किया। इसका मतलब यह हुआ कि धर्म का उद्देश्य भी जीवों की सुख-प्राप्ति के प्रयास में सहायता करना है। लेकिन कैसा सुख? जो हमें संसारी सुख मिलता है, वह सुख? वेदों ने बताया — संसारी सुख चाहे कितना भी बड़ा हो, उससे जीव की तृप्ति नहीं हो सकती।

**यो वै भूमा तत्सुखम्। नाल्पे सुखमस्ति। भूमा तु वा सुखम्।**

**(छान्दोग्य उपनिषद 7.23.1)**

सुख हमेशा अनंत मात्रा का होता है। अनंत होने के कारण उस पर कभी भी दुःख का अधिकार नहीं हो सकता। सुख अल्प मात्रा का या सीमित होता ही नहीं। हमें इस संसार में तो कोई ऐसा सुख कभी नहीं मिला कि जो खत्म न हो। क्यों? आइए समझते हैं —

**सुखं दुःखं च मर्त्यानां मनोमात्रं समं स्मृतम्।**
**(भगवत11.19.43)**

भागवत सुख और दुःख ये केवल मन की कल्पना मात्र हैं। मतलब हमें इस संसार में मिलने वाला सुख हमारे मन की अवधारणा पर आधारित है। यदि हमारा मन किसी व्यक्ति या वस्तु में सुख मानता है तो हमें वह हमारे मन का माना हुआ सुख उस व्यक्ति या वस्तु से प्राप्त होता है। वस्तुतः किसी वस्तु या व्यक्ति में कोई सुख नहीं होता।

**चित्तमेव हि संसारस्तत्प्रयत्नेन शोधयेत।**
**यच्चित्तस्तन्मयो भवति गुह्यमेतत्सनातनम्॥ (मैत्रायणी उपनिषद् 4.3)**

जो भी संसार है (संसारी या इस दुनिया में मिलने वाला सुख-दुःख) वह चित्त (मन) ही है। अर्थात् संसारी सुख मानसिक सुख है। इसलिए मनःस्थिति बदलने पर संसारी सुख समाप्त हो जाता है।

जैसे किसी ने पहली बार कार खरीद ली। जब कार नई-नई घर आती है तो मन में काफी एक्साइटमेंट होती है। मन में सुख का अनुभव होता है। लेकिन वही कार जब पुरानी हो जाती है तब सब एक्साइटमेंट खत्म हो जाती है। कार चलाना एक दैनंदिन रूटीन काम हो जाता है। इतना ही नहीं, यदि मूड सही न हो या मन के

खिलाफ किसी कारणवश कार चलाना पड़े तो वही कार दुःखप्रद लगती है।

इस बदलाव को यदि गहराई से देखोगे तो यह समझ में आता है कि कार लेने से पूर्व मन ने बार-बार यह सोचा था कि कार में सुख है। समाज में हमारा स्टेटस बढ़ेगा। कार चलाने में मज़ा आएगा। कार से जब चाहे, जहाँ चाहे जा सकते हैं, इत्यादि। और अंततः बुद्धि ने मन के कहने के अनुसार कार खरीदने का निर्णय लिया। जब कार खरीद ली तो मन को कार में अपना ही माना हुआ सुख मिला। लेकिन सुख तो कार में था ही नहीं, इसलिए कुछ दिन बाद मन ने सोचा कि कार में कोई एक्साइटमेंट नहीं है तो सब एक्साइटमेंट खत्म हो गयी।

मन किसी वस्तु या व्यक्ति में सुख क्यों मानता है? वो इसलिए कि मन, बुद्धि, इंद्रियाँ ये सब आत्मा की नौकर हैं। आत्मा इंद्रिय-मन-बुद्धि का स्वामी है और भगवान का अंश है। हमने पूर्व में देखा कि भगवान ही आनंद हैं जो शाश्वत और अनंत हैं। अतः जीव आनंद या सुख का अंश है। इसलिए जीव या आत्मा वही शाश्वत और अनंत आनंद चाहता है। मन अपने स्वामी जीव की सुख-पूर्ति हेतु सुख की तलाश करता है। मन किसी वस्तु या व्यक्ति में सुख इसलिए मानता है क्योंकि बिना कहीं सुख माने मन को सुख मिल ही नहीं सकता। मन का सुख ढूँढने का तरीका यह है कि प्रथम कहीं सुख मानकर उसे पाने की इच्छा निर्माण करो। फिर उस इच्छा-पूर्ति हेतु कार्य करो। जब इच्छा पूरी हो जाए तो जहाँ सुख माना था वहीं से अपना ही माना हुआ सुख प्राप्त करो। यदि इच्छा पूरी न हुई तो मन को सुख के बजाय दुःख मिलता है। लेकिन मन इस भूल-भुलैया को नहीं समझ पाता और सोचता है कि उस वस्तु या व्यक्ति में सुख है जहाँ उसने शुरुआत में सुख माना था। इसी कारण संसारी सुख काल्पनिक सुख है — मन की कल्पना का परिणाम मात्र।

मन माया का बना है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, मन, बुद्धि, अहंकार — ये सब के सब मायिक हैं। माया का सजातीय होने से मन स्वभावतः मायिक वस्तु में ही सुख मानता है। देखने की, सूँघने की, सुनने की, खाने-पीने की, और स्पर्श करने की वस्तुएँ पाँच इंद्रियों से (आँख, नाक, कान, रसना, त्वचा) सुख-प्राप्ति हेतु ग्रहण करता है। मन ने अनादि काल से बार-बार पाँच इंद्रियों के पाँच विषय में सुख माना है। इसलिए इस बार-बार पुनरावृत्ति के अभ्यास के कारण मन का विश्वास पक्का हो गया कि संसार में सुख है, और उसके लिए ही प्रयास करना चाहिए। बुद्धि का भी यह पक्का निर्णय है कि यहाँ सुख है। मन को यह पता नहीं कि उसके ही बार-बार अभ्यास का परिणाम है कि उसे लगता है संसार में सुख है, सौ प्रतिशत है कोई डाऊट नही। इस सुख ढूँढने की प्रक्रिया में बहुत बार इच्छापूर्ति न होने पर दुःख का भी सामना करना पड़ता है।

संसार में सुख है — मन की इस गलतफहमी को दूर करने के लिए ही धर्म का निरूपण किया गया है। धर्म का निरूपण करते समय दो ज़रूरतों पर ध्यान दिया गया:

**जगतः स्थितिहेतुः प्राणिनां साक्षादभ्युदयनिःश्रेयसहेतुर्यः स धर्मः। (शंकराचार्य)**

1. कोई भी बिना सुख मिले जीवित नहीं रह सकता — इसके लिए शारीरिक धर्म का प्रतिपादन किया गया। इसे वर्णाश्रम धर्म भी कहते है। ये धर्म जगत चलाने हेतु है। धर्म, अर्थ, काम  ये इसके प्राप्तव्य माने गये।
2. शाश्वत, अनंत मात्रा का सुख मिले बिना दुःख जाएगा नहीं — इसके लिए आत्मिक या भागवत धर्म का प्रतिपादन किया गया। ये धर्म  ईश्वरप्राप्ति की ओर ले जाता है।

शारीरिक धर्म में कर्मकाण्ड का महत्व है। विधि का महत्व है। यह धर्म शरीर-संबंधी क्रियाओं के लिए है। हाथ से पूजा करना, मुँह से जप करना, श्लोक बोलना, पैर से तीर्थाटन, परिक्रमा करना, आँख से भगवान की मूर्ति का दर्शन करना। कर्मकांड नियमानुसार ही होना चाहिए नही तो सुख के बजाय दुःख ही मिलेगा। शरीर के रिश्ते-नाते जैसे माँ, पिता, बेटा, बेटी, पति, पत्नी आदि के लिए कर्तव्य बताए गए। खाना-पीना आदि के लिए नियम बनाए गए। समाज में व्यवहार के नियम बनाए गए। सबको काम बाँट दिए गए ताकि अपनी उपजीविका के बारे में किसी को चिंता ना हो, सब निश्चिंत रहे। किसी को भी उपजीविका के लिए स्पर्धा न करनी पड़े। वर्ण भी अपने पूर्व कर्मों से ही तय होता है, भगवान अपने ओर से उसमें कोई प्लस मायनस नही करते। आज के समाज में भी वर्ग है। भिखारी, मजदूर से लेकर पी एम , सी एम , अरब पति , खरब पति तक। सब एक ही काम करेंगे तो संसार चलेगा ही नहीं। यदि उपजीविका की चिंता , संसारी प्रतिष्ठा, यश, पैसा, ग्लैमर आदि को पाने की स्पर्धा हो तो ईश्वर का चिंतन तो होगा ही नहीं। यही ईश्वर चिंतन सुख दिला सकता है। ईश्वर का चिंतन किसी भी वर्ण के लोग करके अपना अनंत सुख का परम चरम लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं। यदि भगवत् चिंतन नहीं किया तो ब्राह्मण हो या शूद्र, दोनों एक से ही हैं।

शारीरिक धर्म का निरूपण केवल संसार ठीक से चलने के लिए किया गया है। यदि कोई वर्ण अपने को श्रेष्ठ या कनिष्ठ मानेगा तो इसमें भगवान क्या करेंगे? शास्त्रों में अहंकार की तो घोर निंदा की गयी है। भगवत् प्राप्ति की सुविधा सबको एक-सी है क्योंकि भगवत् प्राप्ति मन का विषय है और सबका मन एक-सा है। बस मन से अनन्य भाव से निरंतर भगवान का स्मरण करने मात्र से भगवान मिलते है। पापी, तपस्वी, बालक , युवा, बुढा , स्त्री , पुरुष , नपुंसक , ब्राह्मण , क्षत्रिय , वैश्य , शुद्र, लुला, लंगडा , अंधा , हिंदु

, मुस्लमान , सिख्ख , इसाई, पंजाबी, बंगाली, मराठी, तामिल और भी कोई भगवान का स्मरण कर भगवत् प्राप्ति कर सकता है। कोई भी जीव भक्ति कर सकता है। सब को भक्ति में एक सा अधिकार है।

शारीरिक धर्म पालन यानि पुण्य करने पर संसारी सुख, स्वर्गलोक पुरस्कार स्वरुप में मिलने का प्रावधान तथा अधर्म या पाप करने पर दंड का प्रावधान है जैसे चौरासी लाख योनियों में अरबों-खरबों साल घूमने से मिलने वाला दारुण दुःख, संसारी दुःख, नरक लोक का दुःख इ.। इस धर्म का महत्वपूर्ण उद्देश्य है कि यह संसार सुचारु रूप से चले। समाज में शांति बनी रहे। सब रिश्तों में आपसी तालमेल रहे। घर में कलह न हो। इस धर्म के अनुसरण से मन को मायिक सुख की भी प्राप्ति होती है और मन उच्छृंखल भी नहीं होता। ऐसा नियमबद्ध मन को ईश्वरीय क्षेत्र में लगाने में आसानी होती है।

इस शारीरिक धर्म को अपर धर्म कहते हैं, जिसमें धर्म, अर्थ, काम से मिलने वाले संसारी सुख के लिए जीव प्रयत्नशील रहता है। इस धर्म में रहकर जीव संसारी सुख में उलझ जाता है। कर्मफल त्यागने के बजाय कर्मफल में आसक्त होता है। रिश्ते-नातों में आसक्त होता है। इसी आसक्ति को लोग प्यार का नाम देते हैं। अनंत जन्मों में अनंत माँ, पिता, बेटा, बेटी, पति, पत्नी बने। जब तक ज़िंदगी है तब तक रिश्ते हैं। मरने के बाद सब अपने-अपने कर्मों के अनुसार अलग-अलग गंतव्य स्थान पर जाते हैं। दूसरे जन्म में दूसरे रिश्ते बनते हैं — दूसरी माँ, दूसरा बाप। कहा है वो सब अनादि काल से अब तक के नातेदार? ऐसे ही मरने के बाद इस जन्म के नातेदार हम भूल जायेंगे। हर जन्म में इस गलतफहमी में रहे कि ये मेरे रिश्तेदार हैं। मन शरीर के नातेदार को ही अपना (आत्मा का) नातेदार मान लेता है। असली नातेदार तो वो है जो हर जन्म में हर पल हमारे साथ रहता है - भगवान।

उसको तो हम भूले हुए है।

जीव यह समझ नहीं पाता कि जिस प्रकार हम वही कार्य करते हैं जिससे हमें अच्छा लगता है, यानी सुख मिलता है, वैसे ही सब अपने-अपने सुख के लिए ही कार्य करते हैं। जिस वस्तु या व्यक्ति से हमें सुख मिलेगा उसे हम बार-बार पाना चाहेंगे और उसमें हमारी आसक्ति होगी जिसे प्यार का नाम दिया गया। वस्तुतः हर एक का मन केवल वही कार्य करता जिससे उसी मन को सुख मिले। मतलब साफ है कि हर कोई अपना ही सुख चाहेगा क्योंकि मन को केवल सुख की तलाश है। इस बात को बृहदारण्यकोपनिषद में याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को बताया

**न वा अरे मैत्रेयि ! पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति ।**
**आत्मनस्तु वै कामाय पतिः प्रियो भवति ।**
**न वा अरे, जायायाः कामाय जाया प्रिया भवति, आत्मनस्तु वै कामाय जाया प्रिया भवति।**
**न वा अरे पुत्रस्य वित्तस्य च कामाय पुत्रो वित्तं वा प्रियं भवति, आत्मनस्तु वै कामाय पुत्रो वित्तं वा प्रियं भवति ।**
**न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति, आत्मनस्तु वै कामाय सर्वं प्रियं भवति॥ (बृहदारण्यकोपनिषद 2.4.5)**

तात्पर्य यह कि पति, पत्नी, पुत्र आदि तभी प्रिय लगते हैं जब वे हमें सुख दें। कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के सुख के लिए प्यार नहीं करता बल्कि दूसरे व्यक्ति से मिलने वाले सुख के लिए ही उससे प्यार होता है। इस का कारण यह कि मन के काम करने आधार ही किसी वस्तु या व्यक्ति से मिलने वाला सुख होने से सबका मन हर कार्य अपने सुख के लिए ही करता है। मतलब ये कि इस दुनिया में कोई किसी का नही। सब अपने अंतिम लक्ष्य - सुख के लिए प्रयत्नशील है।

इसलिए किसी के भी प्यार के बहकावे में न आओ। ना किसी से प्यार करने के चक्कर में पडो। यदि कोई बडी बड़ी बाते करके किसी चीज का लालच दे तो सावधान हो जाओ। संसार में चालाक रहो। किसी पर भी विश्वास ना करो। और भगवान के सामने एकदम भोले बनकर उनकी किसी भी क्रिया पर संदेह न करो। कोई आपको मान देता है तो समझो कि उसे हमसे कुछ प्राप्तव्य है। और कोई अपमान करता है तो समझो कि ये उसकी मानसिक गंदगी का परिणाम है; उसे लेकर दुःखी ना हो, ना गुस्सा करो। तभी आप की जीत हुई। अन्यथा उसने आपको डिस्टर्ब करने के लिए आपका अपमान किया और आप डिस्टर्ब हुए तो उसकी जीत और आपकी हार हुई।

द्वेष या दुश्मनी भी मन के सुख की खोज का ही परिणाम है। जो कोई हमारे सुख में बाधा उत्पन्न करता है या हमें लगता है कि कोई हमारे सुख में बाधा उत्पन्न करता है तो उससे द्वेष या दुश्मनी होती है। हम किसी का मन तो नही देख सकते इसलिए बाहरी व्यवहार से कई बार धोखा खा जाते है। ये धोखा संसारी सुख पाने के प्रयास में ही मिलता है। अपर धर्म में जीव मायिक संसारी सुख, स्वर्ग का लक्ष्य बनाकर कर्म करता है। सब मायिक सुख मानसिक होने के कारण अंततः दुःख ही पाता है। इसी धर्म के चक्कर में ही अर्जुन ने युद्ध करने से इंकार कर दिया था। तब भगवान श्रीकृष्ण को कहना पड़ा कि इन सब धर्मों को छोड़कर केवल मेरी शरण में आ।

**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।**
**अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ (गीता 18.66)**

**मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।**
**मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥ (गीता 9.34)**

मैं तेरे सर्व पापों को माफ कर दूँगा। यह भी कहा कि निरंतर मेरा

चिंतन करो, मेरे भक्त बनो, मेरी पूजा करो। इसी से तुम्हें तुम्हारा परम चरम लक्ष्य अनंत आनंद यानी मैं मिलूँगा। इस धर्म को पर धर्म या भागवत धर्म कहते हैं, जो हमें हमारा अंतिम लक्ष्य अनंत आनंद प्राप्त करने की ओर अग्रसर करता है। यह आत्मिक धर्म है। यहाँ संसारी सुख की बात नहीं हो रही बल्कि आत्मा के सुख की या ईश्वरीय सुख की बात हो रही है।

**तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।**
**तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं च परं गमिष्यसि॥॥ (गीता 18.61)**

वो सुख शांति ईश्वर की कृपा से मिलेगी। ईश्वर की वो अंतिम कृपा भगवत् शरणागती से मिलेगी।

**नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।**
**स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥ (गीता 18.73)**

पूरी गीता सुनने के बाद अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा मेरा अज्ञान आपकी कृपा से गया। अब मैं निःसंशय आप जैसा कहेंगे वैसा ही करुंगा, मतलब अब अर्जुन भगवान पूर्ण शरणागत हो गया। गीता के पहले अध्याय में अर्जुन अपर धर्म के भी शरणागत था। और भगवान के भी शरणागत था। वो भगवान के ही शरणागात नही था। यानि अनन्य नही था। अपर धर्म का 'भी' भक्त था। इस धर्म के अनुसार अर्जुन कह रहा था युद्ध में इन सब लोगों को मारने से पाप होगा। उनकी विधवा स्त्रिया व्यभिचारी होगी वो पाप लगेगा। इस कारण वो भगवान की बात नही मान रहा था। भगवान की शर्त है कि केवल मेरी 'ही' शरणागाती करनी होगी। अब देखो, पर धर्म कहता है **त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव। त्वमेव विद्या च द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वमम देव देवः॥ (स्कन्दपुराण )** मतलब ये कि भगवान ही मेरे माता पिता बंधु सखा विद्या और धन । 'ही' का मतलब है भगवान के अलावा

और कोई भी मेरे माता पिता इ. नहीं। लेकिन शारीरिक अपर धर्म कहता है - **मातृदेवो भवः॥ पितृदेवो भवः॥ आचार्यदेवो भवः॥** अर्जुन ने कहा था कि यदि अपर का धर्म पालन नही किया तो पाप होगा परिणाम स्वरूप नरक जाना पड़ेगा। तो भगवान ने कहा 'भी' छोड दे, 'ही' लगा, नही तो तेरा मन कभी भी शुद्ध नही होगा। **सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥** सब धर्म छोड कर केवल मेरी ही शरण में आ। मैं तेरे सब पापों को क्षमा कर दूंगा। ये एक श्लोक घोर से घोर पापी के मन में भी आशा जगाता है कि यदि शरणागत हो गये तो सब पाप माफ हो जायेंगे ऊपर से शाश्वत सुख भी मिलेगा और वो अंतःकरण शुद्धि का प्रयास तुरंत आरंभ करता है। इस श्लोक से ये एकदम साफ होता है कि यदि पर धर्म अपनाना है तो अपर धर्म छोड़ना ही पड़ेगा। फिर से एक बार समझ लीजिए कि अपर धर्म केवल संसार चलाने हेतु ही है। जो लोग पर धर्म का या भागवत धर्म का अवलंब नही लेते, उनके लिए अपर धर्म का पालन अनिवार्य है, पालन न करने से दंड मिलेगा। लेकिन जो लोग भागवत धर्म का पालन करते है उनको अपर धर्म छोडनेसे कोई दंड नही मिलेगा।

**भक्तिः स्वतन्त्रा न हि कंचिदपेक्षते। (भागवत)**
**भक्ति स्वतंत्र सकल सुख खानी। ( रामचरित मानस)**
**स्मरतव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यो न जातुचित् ।**
**सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किंकराः ॥( पद्मपुराण )**

वेदव्यास कहते है - केवल एक विधी कि भगवान का सतत स्मरण हो और केवल एक निषेध कि भगवान का कभी भी विस्मरण ना हो। ये करने पर वेद के कोई भी विधी निषेध पालन करने की आवश्यकता नहीं। आपकी इच्छा हो तो पालन करो, ना इच्छा हो तो ना करो। भक्ति परम स्वतंत्र है। उसे किसी भी दूसरे साधन जैसे ज्ञान, कर्म आदि की आवश्यकता नही। भक्ति अपने में ही

पूर्ण है।

**स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।**
**अहैतुक्यप्रतिहता या यायात्मा सुप्रसीदति॥ (भागवत 1.2.6)**

पर धर्म मन पर जोर देता है। सुख पाने की क्रिया में मन ही प्रमुख होने से मन को संसार से हटाकर भगवान में लगाने की बात इस धर्म में बताई गई है।

यह धर्म कहता है कि शाश्वत और अनंत सुख की प्राप्ति मन के द्वारा ही होगी। सुख ढूँढने का मन का तरीका भी वही रहेगा। प्रथम उसे यह मानना होगा कि मुझे जो असली सुख चाहिए वह भगवान में है। फिर मन उस सुख को पाने के लिए भगवत्-प्राप्ति का प्रयास करेगा।

मन अब तक संसार में सुख मानता आया है, इसीलिए धन, स्त्री, पति-वैभव, प्रतिष्ठा, सत्ता इत्यादि संसारी वस्तुओं की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील है। अनादि कालीन अभ्यास के कारण अब उसको लगता है कि संसारी पदार्थ — रसगुल्ला, स्त्री, धन आदि — में ही सुख है। उसको ज़रा भी एहसास नहीं कि उसका ही माना हुआ सुख उसे इन पदार्थों से मिल रहा है। यह विश्वास इतना प्रगाढ़ है कि मरण-शय्या पर भी वह संसारी पदार्थों का ही चिंतन करता है। अनंत बार मरने पर भी मन का निश्चय नहीं बदला। परिणामस्वरूप जीव चौरासी लाख नरकादि योनियों में घूमता हुआ दारुण दुःख पा रहा है। संसार में असीम अनंत सुख है ही नहीं तो उसको मिलेगा कैसे? सुख मिला, फिर गया, फिर दुःख मिला, फिर प्रयास किया, फिर सुख मिला, फिर गया, फिर दुःख मिला — यही नाटक अनादि काल से चल रहा है।

**यत् पृथिव्यां व्रीहि यवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।**
**नालमेकस्य तत्सर्वम् इति मत्वा शमं व्रजेत्॥ (मत्स्य पुराण**

**53.63)**

**यत् पृथिव्यां व्रीहि-यवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।**
**न दुह्यन्ति मनः-प्रीतिं पुंसः काम-हतस्य ते॥ (भागवत 11.9.29)**

पृथ्वी पर जितना भी धान्य, यव, सोना, पशु, स्त्रियाँ यदि एक व्यक्ति को भी मिल जाएँ तो भी उसकी कामना की पूर्ति नहीं हो सकती। उसकी वासना और बढ़ेगी। भौतिक सुखों से इच्छाओं की तृप्ति असंभव है। इच्छा-पूर्ति तो आग में घी डालने का काम करती है। कामना पूर्ति होने पर लोभ बढ़ता है और कामना पूर्ति न होने पर क्रोध आता है। दोनों ओर से फँस गए। कामना पूर्ति तभी संभव है जब अनंत सुख प्राप्त होगा और ऐसा सुख भगवान से ही प्राप्त होगा, कारण कि भगवान ही अनंत सुखरूप हैं।

**अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।**
**ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्या रताः॥ (यजुर्वेद, ईशोपनिषद 12)**

यह श्लोक कहता है कि जो लोग अनादि प्रकृति या माया की उपासना करते हैं, यानि मायिक विषयसुख पाना चाहते हैं, वे घोर दुःखरूपी अंधकार को प्राप्त होते हैं।

**दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके।**
**हेतुतोऽव्यपदेशाच्च दृष्टे सापि परैः॥ (सांख्य दर्शन 1.1)**

दुःख तीन प्रकार का होता है — आध्यात्मिक, अधिभौतिक, आधिदैविक। शारीरिक यातना, मानसिक तनाव, मरने का दुःख, सर्दी-गर्मी आदि से मिलने वाला दुःख, दूसरों से मिलने वाले अपमान आदि अनेक प्रकार के दुःख।

**कुत्रापि कोऽपि सुखी तदपि दुःखशबलमिति दुःख पक्षे निःक्षिपन्ते विवेचकः॥ (सांख्य दर्शन 1.2)**

कहीं भी, कोई भी व्यक्ति पूर्ण सुखी नहीं है, बल्कि हर सुख में दुःख मिला हुआ है। इस कारण सभी प्रकार के सुख केवल मानसिक भ्रम मात्र हैं, क्योंकि हर सुख अंततः दुःख ही देता है — जैसे सुख देने वाली व्यक्ति या वस्तुओं का नाश, अनचाही परिस्थितियों का निर्माण, अधिक पाने की इच्छा, बढ़ती तृष्णा, रक्षा की परेशानी, खत्म होने का भय, चौरासी लाख योनियों में भ्रमण, नरकादि यातना आदि। असली सुख इन सब दोषों से रहित होता है।

**श्रीकृष्ण सूर्य सम, माया होवै अंधकार।**
**जहाँ सूर्य ताहा नहीं माया अंधकार॥ (श्री चैतन्य महाप्रभु, चैतन्य चरितामृत)**

मायिक सुख अंधकार है क्योंकि परिणाम में घोर दुःख मिलता है। लेकिन भगवान सुखरूपी सूर्य हैं, उनके सामने दुःखरूपी मायिक अंधकार खड़ा नहीं हो सकता। तात्पर्य यह कि एक बार भगवत्-प्राप्ति करने पर सब प्रकार का दुःख सदा के लिए चला जाता है।

मन को असली सुख तभी मिलेगा जब वह सुख की तलाश उस क्षेत्र में करेगा जहाँ सुख है। आप कहेंगे यह तो काफी आसान लग रहा है। लेकिन समस्या यह है कि मन को सांसारिक सुख की लत लग चुकी है। वह सांसारिक सुखों को छोड़ना नहीं चाहता। इसलिए वह मायिक क्षेत्र में ही सुख ढूँढता है, जहाँ जीव जिस सुख को प्राप्त करना चाहता है उसका लवलेश भी नहीं। तो क्या करे? भगवान ने कहा —

**असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलं।**

**अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥ (गीता 6.35)**

इसमें कोई संदेह नहीं कि मन का यह दुर्निग्रह है कि वह संसारी सुख को छोड़ना नहीं चाहता। इतना ही नहीं, मन अतिशय चंचल भी है, इसलिए उसको नियंत्रित करना अत्यंत कठिन है। लेकिन निरंतर अभ्यास एवं वैराग्य से मन पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

अभ्यास यह है कि मन से बार-बार ईश्वर का चिंतन करो। वह मन बार-बार वहाँ से भागकर संसारी वस्तु और व्यक्ति का चिंतन करने लगेगा तो उसे तत्वज्ञान द्वारा समझाओ कि - मैं आत्मा हूँ, मेरा सुख संसार में नहीं अपितु भगवान में है। मरने पर संसार छोड़ना ही पड़ेगा लेकिन भगवान मरने पर भी साथ रहेगा। संसारी मित्र, नातेदार सब स्वार्थी हैं। जब तक इनके मन अनुसार चलो तब तक ये अनुकूल हैं। प्रतिकूल होने पर तो रिश्ते टूट जाते हैं। इतना ही नहीं, एक-दूसरे से लड़ाई भी होती है, यहाँ तक कि हत्या भी होती है। इस तरह सोचने से संसार से वैराग्य होगा।

वैराग्य के दो पहलू ये कि प्यार, खार या किसी भी प्रकार से संसार का चिंतन न हो। संसार में ना अनुकूल भाव से ना प्रतिकूल भाव से लगाव हो। संसार किसी भी से मन में आया तो मन को गंदा ही करेगा, जबकि हमे मन साफ करने के लिए शुद्ध भगवत् विषय को ही मन में लाना होगा। तात्पर्य ये कि भगवान से प्यार हो और संसार में सब जगह उदासीन भाव हो।

**कबीरा खड़ा बजार में माँगे सब की खैर ।**
**ना काहू सो दोसती ना काहू सो बैर ॥**

अभ्यास और वैराग्य से मन को भगवान में लगाना होगा। बार-बार अभ्यास करने पर हमें भगवान वैसे ही अच्छे लगने लगेंगे जैसे अभी संसार अच्छा लगता है। मन को समझाओ कि एक भगवान

ही ऐसा नातेदार है जो सदा हमारे साथ रहता है। हे मन, तुम ही उस हृदय में रहने वाले भगवान को महसूस नहीं करते हो, इसलिए दुःखी हो। वही हमारा सच्चा नातेदार है। एक बार भगवान से प्यार कर के देखो जिस प्रकार संसार में करते हो। आपका अनुभव ही आपको भगवान की ओर चलने के लिए और प्रेरित करेगा।

**द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न्यो अभिचाकशीति॥
(मुण्डकोपनिषद 3.1.1)**

इस शरीर रूपी वृक्ष में एक हृदय रूपी घोंसला है जिसमें दो पक्षी (जीव और भगवान) रहते हैं। एक पक्षी (जीव) तो फल (कर्मफल) खाता है और दूसरा पक्षी (भगवान), जो पहले पक्षी का सखा है, वह कुछ खाता नहीं तथा पहले पक्षी को देखता रहता है। इसका भावार्थ यह है कि भगवान सब देखता है। उससे कुछ भी छुपा नहीं। वही भगवान जीव की रक्षा करता है तथा जीव को जीवन प्रदान करता है।

**नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानाम् एको बहूनां यो विदधाति कामान्। (कठोपनिषद् 2.2.13, श्वेताश्वर उपनिषद् 6.13)**

वह भगवान जीव को चेतना (जीवन) देता है। उस भगवान से बढ़कर कौन हमारा हितैषी सखा होगा, जो हमारे सुख-प्राप्ति हेतु ही सब कुछ करता है। हमारे कर्मों का हिसाब रखकर उसका फल देता है। माँ के पेट में हमें शरीर हमारे ही पिछले कर्मों के अनुसार देता है। किसी दो आदमियों के अंगूठा-निशान भी समान नहीं होते — ऐसे वैलक्षण्य से शरीर बनाया। माँ तो जानती भी नहीं कि पेट में क्या हुआ। बाहर निकलने पर हमारे खाने-पीने का इंतजाम करता है। हमारे कर्मों के अनुसार हमारे प्राप्तव्य को हमारे माँ-बाप

से दिलवाता है। आगे चलकर धन आदि का इंतजाम भी कर्मों के अनुसार ही किया जाता है।

**त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।**
**त्वमेव विद्या च द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वमम देव देवः॥**
**(स्कन्दपुराण )**

**माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः। स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः।**
**सर्वस्वं मे रामचन्द्रो दयालुर्नान्यं जाने नैव जाने न जाने॥**
**(रामरक्षा स्तोत्र 31)**

भगवान ही हमारी माता, पिता, बंधु, सखा, विद्या, धन हैं। भगवान ही हमारा सबकुछ हैं। हमारे सब नाते उसी से हैं। उनके अलावा हम किसी को नहीं जानते, नहीं जानते, नहीं जानते। मतलब हमारे सब नाते भगवान से ही हैं।

**अहं तावन्महाराजे पितृत्वं नोपलक्षये।**
**भ्राता भर्ता च बन्धुश्च पिता च मम राघवः॥ (रामायण, अयोध्याकाण्ड )**

लक्ष्मण कहते हैं — "मैं महाराज दशरथ को अपना पिता नहीं मानता। राम ही मेरे भाई, स्वामी, पिता और सुहृद हैं।"

**सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥ (भगवद्गीता 5.29)**

जो मुझे अपना सुहृद, मतलब सच्चा हितैषी, शुभचिंतक मानता है, वह अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेता है।

**माता पिता भ्राता निवासः शरणं सुहृद्गतिर्नारायणः॥**

**(सुबालोपनिषद्)**
**गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।**
**प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥ (गीता 9.18)**

मैं ही सबका अंतिम लक्ष्य (गति), पालनकर्ता (भर्ता), स्वामी (प्रभु), साक्षी (सबके कर्मों का हिसाब रखने वाला), निवास स्थान (मुझमें ही सब स्थित हैं), शरण और परम मित्र (सुहृत्) हूँ। मैं ही सृष्टिकर्ता, सबका उद्गम स्थान हूँ। मैं ही सबका प्रलय (अंत में सब मुझमें समा जाते हैं)। मैं ही सभी का आधार एवं आश्रय हूँ। जिससे सृष्टि बनती है वह अविनाशी बीज — जो सब कारणों का कारण है और जिसका कोई कारण नहीं — मैं ही हूँ।

संसारी नातों के बारे में क्या कहा जा रहा है देखिए —

**स्नेहो वैरं यथा मर्त्येषु नान्यत्र क्वचन जायते। (श्रीमद्भागवत 11.2.42)**
**सुतदारादिरत्नानि दानशौर्यादिकानि च।**
**सर्वं नश्यति कालेन कालो हि दुरतिक्रमः॥ (भर्तृहरि – वैराग्यशतक 63)**
**स्नेहद्वेषौ हि जन्तूनां कारणं दुःखसंग्रहः।**
**सुतदारगृहेष्वेव स्नेहः सम्पद्यते नृणाम्॥ (महाभारत – शान्तिपर्व 262.12)**
**सुतदारगृहक्षेत्रधनानि मोहवशान्मनुजः प्रियमिच्छन्।**
**खलु पन्थसंगमवदेतद्न हि कस्यचित् शाश्वतमस्ति किञ्चित्॥ (महाभारत वनपर्व 174.23)**
**सुतदारादयः सर्वे मनुष्यस्य न निजा मताः।**
**स्वार्थपरिवर्तिनो नित्यं पान्थाः सङ्गम इवागताः॥ (सुभाषित)**

संसारी नाते, धन आदि सब नष्ट हो जाते हैं उनमें आसक्ति न करो। सुत, दारा, गृह पर ही स्नेह टिकता है; पर यह सब अस्थिर होने से

दुःख-संग्रह का कारण है। जब कोई सगा संबंधी मरता है तो हमे अपार दुःख होता है। इसका उद्गम हमारी इस मूर्खता में है कि हमने हमारे नित्य साथी भगवान की ओर ध्यान न दे कर अस्थायी नातेदारों को स्थायी मान लिया। कुछ भी टिकने वाला नहीं। मरने के बाद पुराने सब नाते नष्ट होकर नये जन्म में नये नातेदार बनते है। संसारी नाते स्वार्थ के आधार पर टिके रहते हैं। ये नाते ऐसे हैं जैसे कई पथिक किसी सराय में मिलते हैं। किसी का किसी से स्थायी नाता नहीं हो सकता। राहगीरों की भाँति ही जीवों का संयोग क्षणिक है; कर्म के फल से ही थोड़ी देर के लिए रिश्ते बनते हैं।

**ना स्वर्गं नु लोकमव्ययनं न भ्रात्रा न मित्रं न जनः। (ऋग्वेद 10.85.44)**

यहाँ न स्वर्ग (सुख) है, न स्थायी लोक, न भाई है, न मित्र, न जन (रिश्तेदार)। कोई किसी का नहीं। सब लोग अपने अंतिम स्वार्थ (अनंत सुख) हेतु सही तरीके से (भगवत्प्राप्ति के लिए ) या गलत तरीके से (संसार प्राप्ति के लिए) प्रयत्नशील हैं। मनुष्यों के सभी संबंध देह-आधारित हैं, स्थायी नहीं। हम सत्य परिस्थिती स्वीकार नही करते। जो सत्य अवगत कराते है वे संत हमे दुश्मन से प्रतीत होते है क्योंकि हमे लगता है कि वे हमारा सुख, धन, संपत्ति छीन लेंगे। यदि हम वेद शास्त्र की सत्य बात मान कर तदनुसार अपनी बुद्धि से निर्णय ले तभी काम बनेगा। नही तो अनादि काल से दुःख भोगते आये है और आगे अनंत काल तक भोगते रहेगे। तात्पर्य यह कि आत्मा-आधारित नित्य संबंध केवल भगवान से है। भगवान से ही रिश्ता जोड़ो। इस दुनिया में कोई किसी का नहीं। बस एक भगवान ही सबका स्थायी हितचिंतक सखा, माता, पिता, बंधु, प्रियतम, स्वजन है। इसलिए अब तो यह पक्का हो गया कि भगवत्-प्राप्ति ही लक्ष्य बनाना चाहिए और तदर्थ कर्म करना चाहिए।

**तत्कर्म हरितोषं यत् स बुद्धिः केन वा नयेत्। (भागवत 4.29.46)**
अर्थ: वही कर्म श्रेष्ठ है जिससे भगवान हरि प्रसन्न हों; इससे भिन्न कर्म बुद्धिमान पुरुष नहीं करते।

**धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः।**
**नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रमेव हि केवलम्॥ (भागवत 1.2.8)**
यदि धर्म का पालन श्रीकृष्ण में प्रेम नहीं उत्पन्न करता तो धर्मकर्म केवल परिश्रम है, अर्थात् निंदनीय है।

**सो सब करमु धरमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥**
**जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू॥ (रामचरितमानस)**

**देवर्षि-भूताप्त-नृणां पितृणां न किंकरो नायं ऋणिच राजन्।**
**सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहर्य कर्तम्॥ (भागवत 11.5.41)**
जो सर्वात्मा मुकुन्द (श्रीकृष्ण) की पूर्ण शरण में चला जाता है, वह देवों, ऋषियों, भूतों, बन्धुओं, मनुष्यों और पितरों सभी के ऋणों से उऋण हो जाता है। उसके लिए अलग से प्रयास नही करने पडते। लेकिन जो भक्ति नही करता उसको इन ऋणमुक्ति के लिए वेदवर्णित कर्म करने पडते है।

**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।**
**अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ (गीता 18.66)**
**मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।**
**मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥ (गीता 9.34)**

सब धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आकर मेरी भक्ति करो।

**आज्ञायैवम् गुणान्दोषान् मयादिष्टानपि स्वकान्।**
**धर्मान्सन्त्यज्य यः सर्वान्मां भजेत स तु सत्तमः॥ (भागवत 11.11.32)**
भगवान कहते हैं कि जो व्यक्ति वेदों में मेरी आज्ञा द्वारा निर्धारित अपने धर्मों को भी छोड़ देता है, और मेरी ही सेवा या भक्ति में सर्वथा लिप्त हो जाता है, वही श्रेष्ठतम है।

**क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।**
**कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ (गीता 9.31)**

मन शुद्ध होने पर तत्क्षण अनंत सुख का अनुभव भगवत् प्राप्ति से होता है। और भगवान प्रतिज्ञापूर्वक कहते है कि मेरे भक्त का पतन नही हो सकता। ये गारंटी कर्मी, ज्ञानी, योगी के लिए नही।

**न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः।**
**न च सङ्कर्षणो न श्रीः नैवात्मा च यथा भवान्॥ (भागवत 11.14.15)**
हे उद्धव! मुझे न ब्रह्मा, न शंकर, न बलराम, न लक्ष्मी, और न ही मेरी आत्मा उतनी प्रिय है जितने प्रिय मेरे भक्त हैं।

**साधवो हृदयमह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।**
**मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥(भागवत)**

साधुजन मेरे हृदय में है और मैं उनका हृदय हूँ। वे मेरे अतिरिक्त किसी को नहीं जानते और मैं भी उनके अतिरिक्त किसी को नहीं जानता।

**मन्निमित्तं कृतं पापम् अपि धर्माय कल्पते।**
**माम् अनादृत्य धर्मोऽपि पापं स्यान् मत्प्रभावतः॥ (हरि-भक्ति-विलास 10.311)**

भगवान कहते हैं — मेरे लिए किया गया पाप भी धर्म बन जाता है। और मेरी अवहेलना करके या मुझे छोडकर किया गया धर्म भी पाप बन जाता है।

**आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।**
**इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणो हरिः॥" (वेदव्यास)**
सभी वेद, उपनिषद, पुराण, स्मृतियाँ, दर्शन और शास्त्रों को बार-बार पढ़कर और विचार करके अन्ततः यही निष्कर्ष निकलता है कि केवल भगवत्-प्राप्ति ही जीवन का परम लक्ष्य है। भगवान का मन से रूपध्यान करो।

**न साधयति मां योगो न साङ्ख्यं धर्म उद्धव।**
**न स्वाध्यायः तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥ (भागवत 11.14.20)**
**भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽत्मा प्रियः सताम्।**
**भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि संभवात्॥ (भागवत 11.14.21)**
**न वेदाः न च यज्ञानां न दानं न च चेष्टितम्।**
**हरिभक्तिर्विना नाथ नान्यत् शरणमस्ति मे॥ (गरुड पुराण 2.49.51)**
**न ज्ञानं न तपो दानं न यज्ञो न च कर्मणा।**
**प्राप्यते हरिभक्त्या एव नारायणपदं परम्॥ (स्कन्दपुराण 2.6.1.26)**

वेद, यज्ञ, योग, तप, कर्म से काम नही बनेगा। भक्ति के बिना कोई अन्य साधन लक्ष्य तक नहीं ले जाता। चलिए अब धर्म के बारे में भागवत से उद्धव और श्रीकृष्ण का संवाद देखिए

**श्रुताः श्रुतय ओ विप्रा नानामतानुसंश्रयाः।**
**तेषां विकल्पमूलानां धर्माणां निश्चयं वद॥ (भागवत 11.3.43)**

उद्धव यह जानना चाहते थे कि विभिन्न ऋषियों और गुरुओं द्वारा बताए गए धर्म के कई मार्गों में से कौन सा श्रेष्ठ है।

**परत्रेह च मां राजन् नानावादश्रुतं त्वया।**
**कथं जाति निबध्न्याते मानुषं तद् विदुर्बुधाः॥ (भागवत 11.3.44)**

हे उद्धव! लोकों में अनेक मत इसलिए हैं कि जीवों की प्रकृतियाँ भिन्न हैं। सात्विक, राजस, तामस लोगों ने अपनी बुद्धि अनुसार वेदों का वैसाही अर्थ निकाला। इसीलिए तमाम सारे मत एवं मार्ग बन गये। लेकिन मुझे पाने के लिए केवल भक्ति ही एकमेव मार्ग है।

**कर्मणा मनसा वाचा यः भक्त्या मयि निष्ठितः।**
**नैत्यकोऽपि समो धर्मो दृश्यते न च कार्यतः॥ (भागवत 11.19.20)**

मन, वाणी और कर्म से भक्ति सहित मुझे समर्पित होकर कार्य करने से बढ़कर कोई धर्म नहीं।

**अहैतुकी यद्भवति भक्तिः पुरुषसत्तम।**
**सैव धर्मः परो नृणां प्रेमलग्नान्तरात्मनाम्॥ (भागवत 11.19.21)**

निष्काम भक्ति जो हृदय में मेरे प्रति प्रेम उत्पन्न करे वही मनुष्यों का परमोच्च धर्म है।

**मद्दर्शनं हि भवति यस्य यत्रोपलभ्यते।**
**स धर्मः स परो धर्मो मद्भक्तिर्ह्यखिलात्मना॥ (भागवत 11.19.22)**

जहाँ मेरा दर्शन, मेरा स्मरण, मेरी भक्ति उत्पन्न हो वही सर्वोच्च धर्म है। भक्ति ही परम धर्म है।

**भक्त्या संजायतया भक्त्या बिभ्रत्य उत्कलिकां सताम् ।**
**भावो भगवतोऽर्थाय न तेऽन्यत्र क्वचिद् रतिः ॥ (भागवत)**

साधन भक्ति से अंतःकरण शुद्धी होने पर सिद्धा भक्ति मिलेगी ।

**भक्तिरेवैनं नयति। भक्तिरेवैनं पश्यति। भक्तिरेवैनं दर्शयति।**
**भक्तिवशः पुरुषः। भक्तिरेव भूयसी। (शाण्डिल्य भक्ति सूत्र)**

भक्ति ही जीव को भगवान तक ले जाती है। भक्ति ही भगवान का साक्षात्कार कराती है। भगवान भक्ति के वश में हो जाते हैं। इसलिए भक्ति सर्वोपरि है। वो भक्ति कैसी हो ?

**अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।**
**तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥ (गीता)**

वो भक्ति केवल श्रीकृष्ण की हो। भगवान को छोड कर स्वर्ग के किसी देवी, देवता, या मनुष्य की न हो। भक्ति निरंतर हो। ये नही कि एक-दो घंटे कीर्तन स्मरण किया और बाकि समय संसार का चिंतन किया । संसार में जहा भी मन जायेगा वहा श्रीकृष्ण को देखने का अभ्यास करना होगा। वो भक्ति निष्काम भी हो। यही प्रेम गोपियों ने किया जिनके लिए भगवान ने कहा कि गोपियां मेरी गुरु भी है। गोपियों का प्रेम ऐसा सर्वोच्च स्तर का था कि नारदजी ने भी लिखा "**यथा ब्रज-गोपिकानाम् (नारद भक्ति सूत्र 21)" ।** भगवान से प्रेम हो तो ब्रज गोपांगनाओ जैसा। क्यो? गोपियों का प्रेम अनन्य, निस्वार्थ, निष्काम था। वे केवल श्रीकृष्ण का ही सुख चाहती थी। उसमें अपने सुख इच्छा का लवलेश मात्र भी गंध नही था। उन्होंने अपने सुख की चिंता किए बिना केवल कृष्ण की प्रसन्नता के लिए सब कुछ समर्पित कर दिया। वे सोते-

जाते, खाते-पीते, गृहस्थी का सब काम करते हुए भी हर क्षण कृष्ण के ही चिंतन में डूबी रहती थीं। उनको वेद की मर्यादा और सामाजिक लोक-लाज की तनिक भी चिंता नही थी। इसलिए वे प्रेम की उच्चतम कक्षा महाभाव तक चली गयी।

भक्ति की दस कक्षाएँ है - साधन भक्ति (श्रवण, कीर्तन, स्मरण), भाव भक्ति ( भक्ति परिपक्व होना) अब इसके आगे की कक्षाएँ सिद्धा भक्ति है जो अतःकरण शुद्धि के बाद भगवत् कृपा से मिलेगी जिसके वशीभूत भगवान रहते है। वो है- प्रेमा भक्ति, स्नेह भक्ति, मान भक्ति, प्रणय भक्ति, राग भक्ति, अनुराग भक्ति, भाव भक्ति, महाभाव भक्ति। कुब्जा जो सकाम प्रेमी थी वो प्रेमा भक्ति तक गयी। द्वारिका की रानियाँ जिनका प्रेम सकाम-निष्काम का मिश्रण था वे भाव भक्ति तक गयी। गोपियां जो पूर्ण निष्काम थी, महाभाव तक गयी। राधा अकेली प्रेम की सर्वोच्चतम कक्षा पर विराजमान है जिसका नाम है मादनाख्य महाभाव। ये नही कि आनंद में कही कमी है। अनंत आनंद तो प्रेमा भक्ति पर ही मिलता है लेकिन खुमार में अंतर है। ये तो आप भी जानते है कि बाप बेटे का प्रेम का अनुभव और पति पत्नी के प्रेम का अनुभव अलग होता है।

श्री चैतन्य महाप्रभु कहते है
**न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये ।**
**मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवता भक्तिरहैतुकी त्वयि ॥**

मुझे धन की इच्छा नहीं है। न अनुयायियों या जनसमूह की। न स्त्री-सौन्दर्य की। न विद्वत्ता या काव्य या कला की। हे जगदीश्वर! मुझे इन सबकी कामना नहीं। चाहे कितने भी जन्म हों केवल तुम्हारी अहैतुकी (निष्काम) भक्ति ही बनी रहे।

अतः अभ्यास और वैराग्य से श्रीकृष्ण से निष्काम, अनन्य और

निरंतर प्रेम करने से ही परा भक्ति मिलेगी। भक्ति ही हमारा अंतिम लक्ष्य प्राप्त करने का एकमेव मार्ग है। प्यार करना सब को आता है। ये बात हमेशा दिमाग में रहे कि प्यार का नतीजा हम जिसे प्यार करते है उस प्रेमास्पद से तय होगा। यदि प्रेमास्पद गलत है तो दुःख और यातनाओं के अलावा कुछ नही मिलेगा। प्रेमास्पद मायिक है तो चौरासी लाख नरकादि योनियों का दुःख ही नसीब होगा। प्रेमास्पद श्रीकृष्ण है तो अनंत जीवन ,अनंत ज्ञान, अनंत आनंद मिलेगा। प्यार तो एक सा होता है चाहे संसार में करो या इ ईश्वरीय क्षेत्र में। प्रेमास्पद सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। प्यार को प्रेमास्पद श्रीकृष्ण की ओर मोडना ही भक्ति है और वही हमे इस मनुष्य जन्म में करना है।